

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

त्रिवेदीय सन्ध्या ।

(अन्वय और भाषानुवाद सहित)

शास्त्रविशारद महोपदेशक अध्यापक
परिणत श्रीराधिकाप्रसाद वेदान्तशास्त्री
कर्तृक सम्पादित ।

—:ॐ:—

निखिल भारतवर्षीय वर्णाश्रमसंघके शास्त्रप्रकाशक
विभाग द्वारा प्रकाशित ।

काशी

चिक्रमीय सम्बत् १९८३ ।

सर्वस्वत्व सुरक्षित ।

मूल्य १/- आने ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

त्रिवेदीय-सन्ध्या ।

(अन्वय और भाषानुवाद सहित)

शास्त्रविशारद महोपदेशक अध्यापक
पण्डित श्रीराधिकाप्रसाद वेदान्तशास्त्री
कर्त्तृक सम्पादित ।

—:ॐ:—

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलञ्च सन्ध्या,
वेदाः शाखा धर्मकर्मदिपत्रं ।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं,
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रं ॥

निखिल भारतवर्षीय वर्णाश्रमसंघके शास्त्र प्रकाशक
विभाग द्वारा प्रकाशित ।

काशी

विक्रमीय संम्वत् १९८३ ।

सर्वस्वत्व सुरक्षित ।

मूल्य १=) आने ।



गोपालचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा
भारतधर्म प्रेस, काशीमें मुद्रित।



त्रिवेदीय सन्ध्या ।

सन्ध्या-रहस्य ।

सम् + ध्या=सन्ध्या--परमेश्वरके ध्यान अर्थात् उपासनाको ही सन्ध्या कहते हैं। यह दिवा और रात्रिके सन्धि समयमें की जाती है। इसलिये इसको सन्ध्या कहते हैं। सन्ध्याकी उपासना ब्रह्मकी ही उपासना है। शास्त्रमें लिखा है—

या सन्ध्या सा तु गायत्री द्विधा भूत्वा प्रतिष्ठिता ।

सन्ध्या उपासिता येन तेन ब्रह्म उपासितम् ॥

स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा ।

तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा ॥

जीवन्मुक्तः स तेजस्वी सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः ॥

जो सन्ध्या वही गायत्री है। वही अद्वैत महाशक्ति द्विधा होकर साधकके सामने प्रतिष्ठित होती है। सन्ध्याकी उपासना करनेसे ब्रह्मकी ही उपासना होती है। जो सन्ध्याकी उपासनामें सिद्ध होते हैं, वे तेज और तपस्यासे सूर्यके समान तेजस्वी होते हैं। उनकी चरणरेणुसे पृथ्वी भी पवित्र होती है। वे ही सन्ध्यापूत ब्राह्मण जीवन्मुक्त महापुरुष होते हैं। परब्रह्म निर्गुण, निराकार और मन-बुद्धिसे तथा ध्यान-धारणासे अतीत हैं। देहाभिमानी जीव कभी उनके उस स्वरूपको उपलब्ध नहीं कर सकते। देहादिमें अहंभाव तथा ममत्व बुद्धि छोड़कर निर्गुणरूपमें स्थित होनेपर वे इस भावकी धारणा कर सकते हैं। हम लोग सगुण और साकार हैं। इसलिये सत्त्व, रज और तम इन तीनों

गुणोंसे युक्त साकार ब्रह्माकी ही उपासना कर सकते हैं । सन्ध्यामें ब्रह्म-शक्ति, रुद्रशक्ति और विष्णुशक्तिकी उपासना होती है । यद्यपि परमेश्वर सर्वत्र विराजित हैं, तथापि एकमात्र उपासनासे ही मनुष्य उनके स्वरूपको जान सकते हैं । महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है—

गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यङ्गपोषणम् ।

निःसृतं कर्मसंयुक्तं पुनस्तासां तदौषधम् ॥

एवं स हि शरीरस्थः सर्पिवत् परमेश्वरः ।

विना चोपासनादेव न करोति हितं नृषु ॥

दूधके साथ गौके समस्त शरीरमें घृत व्याप्त रहनेपर भी जिस प्रकार उससे शरीर पुष्ट नहीं होता है, दोहनादि क्रियासे उसके शरीरसे उस दूधको निकालकर घृतरूपमें परिणत करनेसे वह पौष्टिक और रोगनाशक बनता है; उसी प्रकार परमेश्वर घृतकी तरह जीवोंके शरीरोंमें अवस्थित रहनेपर भी उनकी उपासनाके बिना मनुष्योंका कल्याण नहीं हो सकता है ।

सन्ध्या द्विजोंका नित्यकर्म है । कर्म तीन प्रकारके हैं । नित्य, नैमित्तिक और काम्य । नित्य कर्म उसे कहते हैं जिसको करनेसे न तो पाप और न तो पुण्य होता है, जीव अपनी अपनी अवस्थामें स्थित रहते हैं । किसी निमित्तसे जिसको किया जाता है, उसको नैमित्तिक कर्म कहते हैं और किसी कामनासे जिसको किया जाता है, उसे काम्य कर्म कहते हैं । उद्भिज्जसे लेकर देवतापर्यन्त जीव-जगत्में एक एक स्तर (सोपान) है । जीव अपने अपने अधिकारके अनुसार प्रास स्तरमें स्थित रहकर आगेके स्तरमें पहुँचनेके लिये कोशिश करते रहते हैं । जिस कर्मके द्वारा जीव अपने स्तरमें स्थित रहते हैं, उसे नित्य कर्म कहते हैं । इसलिये नित्य कर्मसे विशेष कुछ फल न होनेपर भी आगे बढ़नेके लिये वे ही एक मात्र सहायक हैं । जीव नियमितरूपसे नित्यकर्म ही करता रहे और कुछ भी पुण्य कर्म न करे तो प्रकृतिके नियमके अनुसार क्रमोन्नतिधारामें बढ़ता हुआ आगे बढ़ता बढ़ता अन्तमें ब्रह्मलोकमें पहुँच जा सकेता है । इसी लिये महर्षि यमने कहा है—

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः ।

विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥

नियमपूर्वक जो सन्ध्याकी उपासना करते हैं, वे पापसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं, और जो सन्ध्याकी उपासना नहीं करते, वे अपनी अवस्थासे नीचेकी उद्भिज्जादि योनिमें गिर जाते हैं । अग्निपुराणमें लिखा है—

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या नैवाप्युपासिता ।

जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥

जो सन्ध्या नहीं जानते हैं, सन्ध्याकी उपासना नहीं करते हैं, वे जीते हुए शूद्रकी तरह हैं, और मरनेके बाद कुत्ता आदिकी योनिमें जन्म लेते हैं । याज्ञवल्क्यने कहा है—

निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत् ।

त्रिकालसन्ध्याकरणात् तत् सर्वं विप्रणश्यति ॥

अर्थात् रात्रि या दिवसमें जो कुछ पाप किया जाता है त्रैकालिक सन्ध्या करनेसे वे सब नष्ट हो जाते हैं ।

सन्ध्याहीन ब्राह्मणको चाण्डाल ब्राह्मण कहते हैं । शास्त्रमें लिखा है—

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वकर्मविवर्जितः ।

निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥

जो ब्राह्मण सन्ध्यादि क्रियाहीन, मूर्ख, सर्वधर्मसे रहित और सर्वभूतोंके प्रति दयाहीन होते हैं, उनको चाण्डाल विप्र कहते हैं । महर्षि दक्षने भी कहा है—

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।

यदन्यत् कुरुते किञ्चित् न तस्य फलभाग् भवेत् ॥

सन्ध्या न करनेसे मनुष्य सर्वदा अपवित्र रहते हैं, किसी कार्यके अधिकारी नहीं होते हैं और किसी कार्यके फलभागी भी नहीं होते हैं । शास्त्रमें जितने प्रकारकी साधन-

शैलियां हैं, उनमेंसे सन्ध्या ही सर्वोत्तम है। मन्त्र, हठ, और लयादि योग क्रियाओंके साथ भी इसका पूरा सम्बन्ध है। इसके यथारीति साधनके द्वारा वैराग्य और उच्चतम ज्ञान भी प्राप्त हो सकता है। अपने अपने अधिकारके अनुसार गुरुदेवसे उपदेश प्राप्त करके इसका साधन करना चाहिये।

सन्ध्या उपासना भी है।

कर्मकाण्डके सिद्धान्तके अनुसार सन्ध्या नित्यकर्म होनेपर भी उपासनाकाण्डके सिद्धान्तानुसार यह उपासना भी है। जिस प्रकार ब्रह्म, ईश्वर और विराट् पुरुषरूपी अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये तीनों भाव परमात्माके ही हैं, उसी शैलीपर शब्दब्रह्मरूपी वेद भी अध्यात्म-शुद्धि, अधिदैवशुद्धि और अधिभूतशुद्धिके अर्थ ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड और कर्मकाण्डरूपी काण्डत्रयमें विभक्त हैं। उपासनाकाण्ड, कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनोंका सहायक है। यद्यपि तीनों काण्डोंके साधनमें तीनों काण्डोंका सम्बन्ध थोड़ा बहुत रहता है; परन्तु उपासनाकाण्ड सर्वसुहृद् होनेके कारण इसके क्रियासिद्धांशके साथ अन्य दोनों काण्ड-सम्बन्धी क्रियाओंका प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। सन्ध्योपासना वास्तवमें वेदोक्त ब्रह्मोपासना है। गायत्रीमन्त्रका भावार्थ ज्ञानकाण्डका प्रकाशक है और सन्ध्योपासनाकी अन्यान्य क्रियायें कर्मकाण्डके रहस्य-प्रतिपादक हैं। कर्मकाण्डके सम्बन्धसे सन्ध्योपासन नित्यकर्म हैं, परन्तु उपासनाकाण्डके विचारसे सन्ध्योपासन सर्वफलप्रदा त्रितापहारिणी और आत्मचैतन्यप्रबोधिनी ब्रह्मोपासना है।

उपासना शब्दका अर्थ निकट होना है। उपासनासम्बन्धी-साधन द्वारा साधक अपने अन्तःकरणकी शुद्धि और चित्तवृत्तिका निरोध करता हुआ भगवत् सान्निध्य प्राप्त करता है। यद्यपि पूर्ण सर्वव्यापक परमात्मा सब स्थानोंमें स्थित हैं; परन्तु जीव अपने चित्तकी मलिनताके कारण उनके साक्षात्कार करनेमें समर्थ नहीं होता है। जिस प्रकार

स्वच्छ स्फटिकमणिके सम्मुख अवतक किसी रङ्गका पदार्थ रक्खा रहेगा, तबतक स्फटिकका स्वच्छरूप छिपा रहेगा और स्फटिक उसी रङ्गका मालूम होगा, परन्तु उस रङ्गके पदार्थको हटाते ही स्फटिक अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार उपासनाकाण्डके सुकौशलपूर्ण साधनके द्वारा साधक जब अपने अन्तःकरणसे वैषयिक प्रतिबिम्बरूपिणी मलिनताको हटा देता है, तभी वह भगवत्साक्षात्कार करनेमें समर्थ होता है। उसी शैलीपर जब अन्तःकरणरूपी तड़ागमें वृत्तिरूपी तरङ्गोंका हिल्लोल रहता है, तबतक अप्रकाशित सूर्यमण्डलकी तरह आत्मस्वरूप भी तरङ्गोंमें छिपा रहता है। परन्तु योगभित्तिपर स्थित उपासनाकाण्डके सुकौशलपूर्ण-साधनके द्वारा चित्तवृत्तिनिरोध होनेपर साधकको आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। सुतरां उपासनाकाण्डकी 'गंभीरविज्ञानयुक्तक्रियाओंकी सहायता से साधक जितना जितना अपने चित्तकी मलिनताको धोता हुआ अन्तःकरणकी वृत्तियोंके निरोध करनेमें समर्थ होता है, उतना ही साधक श्री-भगवान्के निकट पहुंच जाता है। श्रीगीतोपनिषद् और योगदर्शनमें यही लिखा है कि, विषय वैराग्य और अभ्यास ही साधनाकी मूलभित्ति है। इसी रीतिसे उपासनाकाण्डके अनुसार गायत्रीकी उपासना करनेसे साधक ब्रह्मके निकट पहुंच सकते हैं।

पौराणिक इतिहास ।

पुराणमें लिखा है:—

त्रिंशत्कोट्यो महावीर्या मन्देहा नाम राक्षसाः ।

कृष्णाऽतिदारुणा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥

ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।

उपासतेऽत्र ये सन्ध्यां प्रतिपन्त्युदकाञ्जलिम् ॥

दहन्ते तेन ते दैत्या वज्रीभूतेन चारिणा ।

एतस्मात् कारणात् विप्राः सन्ध्यां नित्यमुपासते ॥

किसी समय तीस करोड़ राक्षसोंके साथ महाबलवान मन्देह नामक राक्षस सूर्य भगवानको विनष्ट करनेके लिये उपस्थित हुआ था । उस समय देवगण और ऋषिगणने मिलकर हाथमें जल लेकर सन्ध्याकी उपासना करके वज्रके सदृश जलसे राक्षसोंको मार डाला । इसी लिये ब्राह्मण-गण नित्य सन्ध्याकी उपासना करते हैं ।

सन्ध्या करनेसे रोग नहीं होता है ।

सन्ध्या करनेसे केवल आध्यात्मिक उन्नति ही नहीं होती, परन्तु नियमित रूपसे इसकी उपासना करनेसे किसी तरहकी बीमारी भी नहीं हो सकती है । वैद्यक-शास्त्रसे यह सिद्ध होता है कि, वायु, पित्त और कफ इन त्रिविध धातुओंसे प्रत्येक जीवका शरीर बना हुआ है । इन त्रिविध धातुओंकी समतासे शरीर स्वस्थ रहता है और किसीके अधिक होकर वैषम्य होनेसे ही शरीर अस्वस्थ हो जाता है तथा हर तरहकी बीमारीका घर बन जाता है । सन्ध्या करनेसे इन्हीं धातुओंकी गति ठीक ठीक हुआ करती है, कभी बिगड़ती नहीं । आज-कलका नया वर्णचिकित्सा-विज्ञान यह सिद्ध कर देता है कि, लाल, काले आदि सात रङ्गोंके द्वारा सब रोग छूट जाते हैं । हमारे ऋषि लोगोंका भी यही सिद्धान्त है कि प्रातःकालमें लाल ब्रह्मणी, मध्याह्नमें काली वैष्णवी और सायाह्नमें सुफेद रुद्रशक्तिकी चिन्ता करनेसे वायु, पित्त, और कफकी गति ठीक ठीक हुआ करती है, शरीर कभी अस्वस्थ नहीं होता है, अधिकन्तु मनुष्यको नीरोगिता और दीर्घ-जीवनकी प्राप्ति होती है । संसारमें नीरोगिता ही सबसे उत्तम सुख है ।

“ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वात् दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।”

ऋषिगण नियमितरूपसे सन्ध्या करते थे इसलिये बहुत दिनों तक जीते थे । इसीलिये सन्ध्या करनेसे स्वस्थता, दीर्घायु और आध्यात्मिक उन्नति तीनों प्राप्त होते हैं । योगी याज्ञवल्क्यजीने भी कहा है—

सन्ध्या तृपासिता येन तेन विष्णुरुपासितः ।

॥ दीर्घमायुः स विन्देत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

जोकि सन्ध्याकी उपासना करते हैं वे विष्णु अर्थात् विश्वव्यापी परमेश्वरकी ही उपासना करते हैं, उससे उनको दीर्घ आयु मिलती है, और वे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ।

सन्ध्याका काल ।

सन्ध्या चार प्रकारकी होती है । आर्य शास्त्रमें प्रमाण है कि:—

चत्वारः किल सन्धयो भवन्त्यहोरात्रस्य ते ।

यथा प्रातस्तथा सायं मध्याह्ने निशीथः क्रमात् ॥

अर्थात् समस्त दिवारात्रिके मध्यमें प्रातः, मध्याह्न, सायाह्न और निशीथ वे चार सन्धिक्षण होते हैं । उनके अनुसार सन्ध्या भी चार प्रकारकी होती है । प्रातःकालमें ब्राह्मी, मध्याह्नमें वैष्णवी, सायाह्नमें रुद्राणी और निशीथमें इन्हीं त्रिविध शक्तियोंकी समन्वयभूता तुरीया महाशक्तिकी अर्चना होती है । निशीथ सन्ध्या उच्चकोटिके साधक योगीगण कर सकते हैं । इसलिये मन्वादि स्मृतिशास्त्रमें साधारण त्रिविध सन्ध्याका ही विधान किया गया है । इन्हीं त्रिविध सन्ध्याओंमेंसे भी प्रातः और सायंसन्ध्या नित्य है; यह अवश्य ही करनी चाहिये । मध्याह्नसन्ध्या काम्य है । अर्थात् इसको करनेसे काम्य कर्मकी तरह विशेष फल लाभ होगा । न करनेसे पाप नहीं होगा । सूर्योदयके एक दण्ड पहिले और सूर्योदयके बाद एक दण्ड काल पर्यन्त प्रातः सन्ध्याका मुख्य काल है और ऐसा ही सूर्यास्तके एक दण्ड पहिले और सूर्यास्तके बाद एक दण्ड काल पर्यन्त सायं सन्ध्याका मुख्यकाल है और सूर्यभगवान जिस समय आकाशके मध्यमें अवस्थित रहते हैं, उसी समय मध्याह्नसन्ध्या करनी चाहिये । मुख्य काल अतीत होनेसे दश बार गायत्रीका जपरूप प्रायश्चित्त करके सन्ध्या करनी होगी । यदि किसी रौज विशेष कारणसे तीनों बार सन्ध्यामें विघ्न हो जाय तो समस्त दिन उपवास कर दूसरे दिन प्रातः सन्ध्याके समय दश बार गायत्री जपरूप प्रायश्चित्त करके

यथाक्रमसे सन्ध्या करनी चाहिये । उपवासमें असमर्थ होनेसे एक ब्राह्मण-को भोजन कराना होगा । अथवा एक ब्राह्मणके उपयुक्त भोज्य दान करना होगा । सन्ध्या करनेमें बिल्कुल ही असमर्थ होनेसे १०८ बार गायत्री जप करनेसे भी सन्ध्याका फल लाभ होता है ।

सन्ध्याकी व्यवस्था ।

प्रातःसन्ध्या पूर्वमुख, मध्याह्न सन्ध्या पूर्व या उत्तरमुख सायं सन्ध्या नैऋतकोण (दक्षिण पश्चिम कोण) की ओर मुख करके करनी चाहिये ।

सन्ध्या करनेके समय मौन होना चाहिये । उस समय छींक करनेसे, थूकनेसे, बोलनेसे, जम्हाई लेनेसे, अधोवायु त्याग करनेसे और निद्रित हो जानेसे विष्णुको स्मरण करते हुए दाहिने कानको स्पर्श करना चाहिये ।

जननाशौच या मरणाशौचमें वैदिक सन्ध्या नहीं करनी चाहिये । अमावास्या, पूर्णिमा, द्वादशी, संक्रान्ति, और श्राद्धदिवसमें सायंसन्ध्या नहीं करनी चाहिये । तान्त्रिक सन्ध्या सब समय कर सकते हैं । उपनीत द्विजोंका ही वैदिक सन्ध्यामें अधिकार है । तान्त्रिकसन्ध्या सब कोई कर सकते हैं ।

सन्ध्या-भेद ।

वैदिक और तान्त्रिक भेदसे सन्ध्या द्विविध है । आजकल भारतवर्षके द्विजातियोंमें दो प्रकारकी दीक्षा दीख पड़ती है । एक वैदिक दूसरी तान्त्रिक । द्विजाति भिन्न अन्य जातियोंमें केवल तान्त्रिक दीक्षाका ही प्रचलन है । उपवीत (जनेऊ) होनेके समय गायत्रीकी जो दीक्षा होती है, उसको वैदिक दीक्षा कहते हैं और कुलगुरु या प्रसिद्ध साधु महात्माओंसे जो बीजमन्त्र ग्रहण किया जाता है, उसको तान्त्रिक दीक्षा कहते हैं ।

इसलिये द्विजातिगण वैदिक सन्ध्या करके तान्त्रिक सन्ध्या करें और ब्राह्मणसे भिन्न अन्य अन्य जातियाँ केवल तान्त्रिक सन्ध्या करें । तान्त्रिक

सन्ध्यामें प्रत्येक देवताकी पृथक् पृथक् गायत्री भी है। उसीका जप करना चाहिये। तान्त्रिक सन्ध्या करनेमें असमर्थ होनेपर केवल इष्टमन्त्रके सौ बार जपसे ही सन्ध्याका फल मिल सकता है।

सन्ध्या-पद्धति ।

वर्तमान कल्पमें ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन वेदचतुष्टयकी सब समेत ११८० एक हजार एक सौ अस्सी शाखाएँ हैं। इतनी ही संहिताएँ इतने ब्राह्मण, इतने ही उपनिषद् और इतने ही कल्प सूत्र हैं। सुतराँ स्वस्वशाखाके अनुसार सन्ध्याकी पद्धतियाँ भी इतनी ही हैं, इन्हीं शाखाओंसे संग्रह करके गोमिलादि गृह्य सूत्रकारोंने वेदके ब्राह्मण भागके अनुसार सन्ध्याकी पद्धति पहले लिखी थी। उन लोगोंके मतसे 'प्राणायाम-से लेकर गायत्रीका विसर्जन' पर्यन्त ही सन्ध्या है। प्रायः सभी देशोंमें इसीका प्रचलन भी है; परन्तु उसके बाद गुणविष्णु आदि प्राचीन संग्रहकारोंने उस सन्ध्यामंत्रोंके साथ और शास्त्रोंसे लेकर कुछ वैदिक मंत्र जोड़ दिये हैं। उस अंशको न करनेसे कुछ हानि नहीं होती। करनेसे "अधिकस्याधिकं फलं" न्यायके अनुसार फलाधिक्य होता है। इसलिये पद्धतिकारोंके मतानुसार ही सन्ध्याकी पद्धति इसमें लिखी गई है।

क्रिया-भाग ।

सन्ध्यामें दस प्रकारकी क्रियाएँ हैं। (१) मार्ज्जन (२) प्राणायाम (३) आचमन (४) पुनर्मार्ज्जन (५) अवमर्षण (६) सूर्योपस्थान (७) गायत्रीका जप (८) आत्मरक्षा (९) रुद्रोपस्थान (१०) सूर्यार्घ्य ।

(१) मार्ज्जन—शास्त्रमें जो सात प्रकारके स्नानका विधान है, यह उसीका अन्यतम है। इसको मन्त्रस्नान कहते हैं। अवगाहन स्नान करनेसे इसको न करनेपर भी कोई हानि नहीं होती है। परन्तु तीन बार स्नान करना सबसे नहीं होता है, इसलिये इस मन्त्रको सन्ध्याकी तरह सन्ध्यामन्त्रमें संयोजित कर दिया है। बहुत लोग ऐसे हैं कि

ज्ञान न करके ही प्राणायामसे सन्ध्या आरम्भ कर देते हैं । इससे कुछ फल लाभ नहीं होता है । ज्ञानसे देहकी शुद्धि होती है । देह पवित्र न होनेसे किसी दैवकार्यमें अधिकार नहीं होता है । अतः मार्जन पहिले करके प्राणायाम करना उचित है । जल ईश्वरकी विभूतियोंमेंसे है और स्थूल रसका प्रधान आश्रय है । विभूतिके द्वारा ही सर्वव्यापी, निस्सङ्ग सृष्टिसे अतीत जगदीश्वरका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ करता है । शुद्धिकार्यमें जलकी प्रधानता रहनेके कारण प्रथम जलमें ही उनकी भावना करते हुए साधक पवित्रताको प्राप्त होता है । पूज्यपाद महर्षि याज्ञवल्क्यजीकी भी आज्ञा है कि “आपः स्वभावतो मेध्याः”—जल स्वभावसे ही पवित्र है । इसलिये जलसे मार्जन करने की व्यवस्था है ।

(२) प्राणायाम—यह मंत्रादि योगोंका प्रधान अङ्ग है । शास्त्रोक्त-प्राणायाम मन्त्रयोगके अनुसार एक प्रकारका, हठयोगके अनुसार आठ प्रकारका और लययोगके अनुसार एक प्रकारका माना गया है । जिसका विस्तारित विवरण मन्त्रयोगसंहिता, हठयोगसंहिता और लययोगसंहितामें द्रष्टव्य है । प्राणायाम तीन प्रकारके हैं । पूरक, कुम्भक और रेचक । वाहरके वायुको उदरमें भरनेको पूरक, उस वायुका हृदयमें निरोध करनेको कुम्भक और निकाल देनेको रेचक कहते हैं । हठयोगादि शास्त्रोक्त प्राणायाम २।८।४ अथवा १६।६४।३२ इस प्रकारकी संख्या रखकर करना होता है । परन्तु इस प्राणायाममें संख्याकी जरूरत नहीं होती है । इसमें कुम्भक, पूरक और रेचक तीनोंकी संख्या समान है । इसका क्रम यह है कि, नाभिमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीका ध्यान करते हुए दक्षिण हस्तके अंगूठेके द्वारा दक्षिण नासिकाको बन्द करके वामनासापुटके द्वारा धीरे धीरे मनमें जप करते करते उदरमें वायु भरे, तत्पश्चात् दोनों नासाओंको बन्द करके मंत्रके मनमें जपद्वारा हृदयमें विष्णुका ध्यान करते हुए वायुका कुम्भक करें । तदनन्तर केवल मंत्र जप करते हुए ललाटमें रुद्रका ध्यान करके दक्षिण नासा-द्वारा शनैः शनैः वायुको निकाल दें । बहुत धीरे धीरे प्राणायाम साधन करना उचित है । प्राणायाम करते समय ब्रह्मादिका ध्यान करनेका तात्-

पर्यं यह है कि, ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं इसलिये देहके बीचमें वायुके आविर्भाव-
वरूप पूरकमें ब्रह्माका ध्यान, विष्णु स्थितिकर्त्ता हैं इसलिये वायुके स्थितिरूप
कुम्भकमें विष्णुका ध्यान और रुद्र संहारकर्त्ता हैं इसलिये संहाररूप रेनकमें
रुद्रका ध्यान किया जाता है । इस तरहसे प्राणायाम करनेसे साधकका
हृदयस्थित पापसंमूह ध्वंस हो जाता है, चित्तकी चंचलता दूर हो जाती
है, मनुष्य दीर्घजीवन लाभ कर सकते हैं । भगवान् मनुने कहा है—

यथा पर्वतधातूनां दोषान् दहति पावकः ।

एवमन्तर्गतं चैनः प्राणायामेन दह्यते ॥

जैसे अग्निसे पार्वत्य धातुओंकी मलिनता नष्ट हो जाती है, वैसे ही
प्राणायामसे साधकके समस्त पाप और रोगादि नष्ट हो जाते हैं । साधकों-
के लिये प्राणायाम विशेष हितकर है । इसलिये सभीको विशेषरूपसे
प्राणायाम करना उचित है ।

(३) आचमन—आचमनीय जलमें कायिक, वाचिक, मानसिक
त्रिविध पापोंको मिलाकर उसको अपने हृदयस्थित तेजमें निक्षेप करना
होता है । इसके मन्त्रके विचार करनेसे यही तात्पर्य निकलता है कि,
प्रथम अपनी भूलसे भयभीत होकर श्रीभगवान्को स्मरण करना, तद्-
नन्तर अपने पूर्वकृतपापोंसे बचनेके अर्थ श्रीभगवान्से प्रार्थना करना
और संस्कारशुद्धिके अर्थ भगवान्के अधिदैव तेजरूपी सूर्यदेवको साक्षात्
समझकर अपने पापोंकी निवृत्ति करके अपने चित्तको संस्कृत करना
होता है । पहिले मन्त्रोंसे साधारण पवित्रता सम्पादन करके इस
मन्त्र तथा अगले मंत्रके द्वारा साधक पूर्णरूपसे पवित्र हो जाता है । इस
प्रकारके आचमन करनेसे वाक्शक्ति बढ़ती है । मन्त्रोच्चारणमें सामर्थ्य
होता है । चित्तकी प्रसन्नता और साधनामें विशेष उत्साह वर्द्धित
होता है ।

(४) पुनर्मांजन—वह पूर्व मांजनके ही अनुरूप है । ऋषि, छन्द,
देवताके स्मरणसे देहके साथ जीवात्मा अधिकतर पवित्र होते हैं । इस-

लिये पहिले साधारण मार्जन करके तब ऋष्यादिके साथ विशेष मार्जन किया जाता है ।

(५) अघमर्पण—अघ शब्दका अर्थ पाप और मर्पण शब्दका अर्थ नाश है । अर्थात् जिससे पाप-नाश होता है उसको अघमर्पण कहते हैं । केवल नासिकामें जल लगानेसे ही इसकी क्रिया नहीं होती है । दोनों नासिकापुटोंको ऊपरकी ओर उठाकर दाहिने हाथकी हथेलीपर जल लेकर दक्षिण नासिका बंद करते हुए वाम नासिकासे उस जलका घ्राण लेवे, इसके बाद मस्तकको दाहिनी तरफ झुकाकर नासिकाके छिद्रको नीचा करे और मन्त्रोच्चारणके साथ देहस्थ पापसमूह कृष्णवर्णके पुरुरूपसे उस जलके साथ मिलित हो गया है, ऐसी चिन्ता करे । इसके बाद उस जलको पृथिवीपर बल पूर्वक डाल देवे । इस क्रियासे सङ्कल्परूप मनकी शक्ति द्वारा तड़ित शक्तिके सहित अध्यात्म, अधिभूत मलवायुके साथ जलमें प्रवेश कर जाता है, क्योंकि जल तड़ित शक्तिका ग्राहक (conductor) है । तत्पश्चात् जलके बलपूर्वक फँकनेकी क्रिया भी किस प्रकार विज्ञान-सम्मत है, सो आजकलके नवीन आविष्कृत मेसमेरिज्म (Mesmerism) विद्याकी हस्तक्रियाके देखने वाले ही समझ सकेंगे । उस समय शरीरकी आधिभौतिक शक्ति इस शुद्धिकार्यमें सहायता करती है । विज्ञान शास्त्रके ज्ञाता भावुकगण संनातनधर्मोक्त ऐसे साधनोंपर जितना विचार करते हैं उतना ही वैज्ञानिक रहस्यको देखकर पुलकित हो जाते हैं । आजकल श्रद्धाकी न्यूनता हो गयी है इस कारण नवीन ढंगपर समझाना पड़ता है । इस प्रकारसे प्रतिदिन इस क्रियाको करनेसे मस्तिष्क शीतल रहती है । प्रज्ञाचक्र उद्बोधित हो जाता है और पापसमूह विनष्ट हो जाते हैं ।

(६) सूर्योपस्थान—यह सूर्यमण्डलमें स्थित चैतन्यमय ब्रह्मके तेजस्तत्त्वकी उपासना है । भगवान् सूर्यदेव ब्रह्मके सर्वश्रेष्ठ प्रत्यक्ष आधिभौतिक विभूति हैं । उन्हींमें उनकी प्राणस्वरूपा ब्रह्मशक्ति गायत्री देवीकी उपासना की जाती है । इसलिये सन्ध्योपासनामें सूर्योपस्थान ही सर्वश्रेष्ठ कार्य है ।

(७) गायत्रीजप.—सन्ध्योपासनामें यही सर्वश्रेष्ठ अनुष्ठान है । गायत्री ब्रह्मोपासनाका मूलमन्त्र है, परन्तु निर्गुण ब्रह्मकी उपासना हमलोग नहीं कर सकते । इसलिये ब्रह्मके सगुण भावकी उपासना हमलोग करते हैं । सत्त्व, रजः और तमः ये ही तीन गुण हैं । इसी गुणत्रयसे विश्वब्रह्माण्ड विरचित हुए हैं । इसीलिये हमलोग सत्त्वगुणमयी स्थितिकारिणी विष्णुशक्ति वैष्णवी, रजोगुणमयी सृष्टिकारिणी ब्रह्मशक्ति ब्रह्माणी और तमोगुणमयी विनाशकारिणी रुद्रशक्ति रुद्राणीकी उपासना करते हैं । सूर्यके साथ ग्रहोंके दूरत्व और अवस्थागत भेदके अनुसार सूर्यके उदयकालमें उत्पत्तिप्रधान ब्रह्मशक्ति, मध्याह्नकालमें विष्णुशक्ति और अस्तकालमें रुद्रशक्तिका विकास होता है । व्यष्टि भावमें प्रत्येक जीवके नाभि, हृदय और ललाट ये तीन स्थान त्रिविध शक्तियोंके केन्द्र हैं । इसलिये प्रातःकालमें नाभिदेशमें ब्रह्माणी, मध्याह्नकालमें हृदयमें वैष्णवी और सायंकालमें ललाटमें रुद्राणीकी उपासना की जाती है । सृष्टि त्रिगुणमयी होनेके कारण प्रत्येक जीवशरीरमें ईडा-पिङ्गला-सुषुम्नारूपी नाडीत्रय विद्यमान हैं । वे तीनों नाडियाँ लक्ष्यरूपसे त्रिभावात्मक और क्रियारूपसे देवात्मक हैं । ईडा और पिङ्गलाकी सन्धिमें सुषुम्नाका उदय होता है । अहोरात्रकी इन सन्धियोंमें भी सुषुम्ना अधिक स्थायी होती है । सुषुम्ना बहते समय ब्रह्मरन्ध्रका-साक्षात् सखन्ध होनेसे साधकका मन अधिकरूपसे स्थिर हो सकता है । योगिराजोंकी यही सम्मति है कि, सुषुम्ना बहते समय साधकको आत्मसाक्षात्कार हुआ करता है । सुतरां ब्रह्मध्यान करनेका वास्तविक सुभीता स्वाभाविकरूपसे किसी सन्धिमें मिला करता है । अतः नियमित समयमें ही इसको करना उचित है । इसमें “तत् सवितुर्वरेण्यम्” इस मंत्रका जप किया जाता है । इस मंत्रसे ईश्वरका ही ध्यान किया जाता है । वस्तुतः गायत्रीकी उपासना ईश्वरकी ही उपासना है । ब्रह्माणी और रुद्राणी की मूर्ति अवलम्बन मात्र है । अर्थात् ईश्वरकी उन्हीं शक्तियोंको हृदयमें लेकर ईश्वरकी ही उपासना करनी चाहिये ।

(८) आत्मरक्षा—आत्मन् शब्दका अर्थ है बुद्धि । उसकी रक्षा अर्थात् जपके समय “सोऽहमस्मि” हम ही ब्रह्म हैं इस तरहकी चिन्ता करनेसे चेतनमय परमपुरुषकी जो कल्याणमयी शक्तिका आविर्भाव होता है, वही शक्ति बराबरके लिये अवस्थित हो, इस तरहकी कामना इस विधिमें की जाती है । यह लय योगका क्रियाविशेष है । इसमें अग्निकी उपासना की जाती है । परन्तु साधारण अग्नि उपास्य नहीं है । योगी याज्ञवल्क्यजीने कहा है—

रविमध्ये स्थितः सोमः सोममध्ये हुताशनः ।
तेजोमध्ये स्थितं सत्यं सत्यमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥
एकाहि सोममध्यस्थोऽमृतं ज्योतिःस्वरूपकम् ।
हृदिस्थं सर्वभूतानां चेतो द्योतयते ह्यसौ ॥

सूर्यके मध्यमें चन्द्र, चन्द्रके मध्यमें अग्निका तेज, तेजके मध्यमें सत्य, और सत्यके मध्यमें अच्युत परमात्मा अवस्थित हैं । सोमके मध्यमें जो अमृतमय ज्योतिःस्वरूप परमात्मा हैं, वेही समस्त जीवोंके हृदयमें रहकर चित्तको प्रकाशित करते हैं । इसलिये अग्नि शब्दसे परमात्माको ही समझना चाहिये । चित्त निश्चल होकर चेतनात्माके साथ एकत्वको प्राप्त करता है, वही साधकका सोऽहमस्मि भाव है और यही आत्मरक्षाका तात्पर्य है । इसमें दाहिने कानके पिछले भागको स्पर्श करनेकी जो विधि है, उसका तात्पर्य यह है कि, वही स्थान जीवनी शक्तियोंका आधार-भूत है । अतः आत्मरक्षामें उसी शक्तिके स्थायित्वकी भी प्रार्थना की जाती है ।

(९) रुद्रोपस्थान—रुद्र परब्रह्मके ही स्वरूप हैं । गायत्रीके द्वारा ब्रह्मकी उपासना करके आत्मरक्षासे चित्तशक्तिकी दृढ़ता स्थापन करके सत्यब्रह्मको प्रणाम करनेकी व्यवस्था है ।

(१०) सूर्यार्घ्यदान—अर्घ्यदानसे सम्मान प्रदर्शन किया जाता है । साधकके सामने सूर्य और ब्रह्म दोनों ही अभिन्न प्रतीत होते हैं

इसलिये सूर्यको अर्घ्य देनेसे ब्रह्मको ही दियाजाता है । मन्त्रके अर्थसे यही स्पष्ट होता है ।

प्रणव माहात्म्य ।

ॐकार परब्रह्मका ही स्वरूप है । वेदमें आज्ञा है कि—“ॐमित्ये-
तदक्षरमुद्रीथमुपासीत” अर्थात् ॐकार-रूप उद्गीथ परब्रह्मकी उपासना
करें, श्रीमद्भगवद्गीतामें भी—

ॐ तत् सदिति निर्द्धेशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।

ब्राह्मणास्तेन यज्ञाश्च वेदाश्च विहिताः पुरा ॥

अर्थात् ॐ तत् और सत् यह तीन शब्द परमात्मा ब्रह्मके निर्देशक
हैं । इन तीनोंके द्वारा ब्राह्मण वेद और यज्ञ पुराकालमें विहित हुए हैं ।
अकार, उकार और मकार इन तीन अक्षरोंसे ॐकार बने हुए हैं । तन्त्रोंमें
वर्णन है कि—

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः ।

मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रिधा मताः ॥

अर्थात् अकार विष्णुका वाचक, उकार महेश्वरका वाचक और मकार
ब्रह्मका वाचक है । यह विश्व संसार त्रिगुणका ही विकास है, इस
संसारकी सृष्टि, स्थिति और लयात्मक क्रिया श्रीभगवान्के तीन गुणोंमें
ही स्थित हैं, इसी कारण सगुण ब्रह्मरूपसे परमात्मा जगदीश्वरको मानना
पड़ता है । जीवका उपास्य उपासकभाव श्रीभगवान्के सगुण ईश्वर-
रूपके साथही सम्भव है । गुणातीत ब्रह्मभाव उपास्य उपासक भावसे
रहित है । इस कारण सगुण भावही एक मात्र अवलम्बनीय है । तीन
गुणोंके अनुसार उनके ही तीन भाव हैं, अर्थात्—रजोगुणसे ब्रह्मा
रूपको धारण करके वे जगत्की सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे
विष्णुरूपको धारण करके ब्रह्माण्डका पालन करते हैं, और तमोगुणमें स्थित
रहकर शिवरूपको धारण करते हुए विश्वका लय करते हैं । जिस

प्रकार रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण यह स्वतन्त्र स्वतन्त्र गुण ही आध्यात्मिकरूपसे श्रीभगवान्‌के ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपोंके प्रकाशक है, उसी प्रकार शब्द राज्यमें अकार उकार और मकार वे तीनों शब्दमय अक्षर विष्णु, महेश्वर और ब्रह्माजीके तीन आधिभौतिक स्वरूप हैं । अपिच जिस प्रकार त्रिगुणात्मक शक्तियोंके सम्मेलनसे ही त्रिगुणमय लीलाधारी जगदीश्वरके आध्यात्मिक सगुणरूपका निर्णय होता है, इसी प्रकार त्र्यक्षरमय ओंकारके द्वारा श्रीभगवान्‌के शब्दब्रह्म स्वरूपका प्रकाश हुआ करता है । इसी कारण महर्षि पतञ्जलिजीने योगदर्शनमें आज्ञा की है कि:—

“ तज्जपस्तदर्थभावनम् ”

अर्थात् श्रीभगवान्‌में और प्रणवमें तादात्म्य सम्बन्ध रहनेके कारण प्रणवका जप और उसके अर्थका विचार करते करते साधक मुक्ति पदको प्राप्त कर सकते हैं । गन्धर्व उपवेद सम्बन्धीय शिक्षाओंमें भलीभांति वर्णित है कि पडज आदि सातों स्वर ओंकारके ही अन्तर्विभाग हैं । जिस प्रकार बहिःसृष्टिमें सात रंग, सात धातु आदि सप्तविभाग पाये जाते हैं और जिस प्रकार अन्तर राज्यमें सप्तज्ञान भूमि आदि सप्त विभागोंका प्रमाण मिलता है, उसी शैलीके अनुसार एकमात्र अद्वितीय शब्दब्रह्मरूपी ओंकार पडज आदि सप्त स्वर विभागोंमें विभक्त होकर नाना शब्द राज्यकी सृष्टि क्रिया करते हैं । इसी कारण शब्द ब्रह्मरूपी ओंकार सब मन्त्रोंका चालक है ।

पूज्यपाद महर्षि याज्ञवल्क्यजीने प्रणव की महिमा वर्णन करते हुए यह आज्ञा की है कि—“वेदोंका आदि अक्षररूपी प्रणव साक्षात् ब्रह्मरूप है । जिसमें ब्रह्मा विष्णु और शिवरूपी त्रिगुणात्मक तीन देवताओं का अधिष्ठान है । इस लोकमें जो प्रणवको जानते हैं वे ही सर्व वेत्ता हैं । सब प्रकारके योग साधनोंका सार प्रणवके विषयमें सबको विदित होना उचित है । जो ब्राह्मण वेद सम्बन्धीय अनेकानेक ग्रन्थ पाठ करके वेदके भारसे केवल अभिभूत हों अर्थात् वेदका मार्ग न समझते हों वे गर्दभ ही हैं । जिस प्रकार अमृतसे तृप्त हुए जीवके अर्थ जलका प्रयोजन नहीं हुआ करता है, उसी प्रकार जो ओंकारके स्वरूपको भलीभांति

जान जाते हैं, उनके लिये और अन्य प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं रहती है । मन्त्रसमूह ॐकारसे युक्त होकर पूर्णबलको प्राप्त हुआ करते हैं । किसी मन्त्रमें यदि कोई अक्षर न्यून अथवा कोई अक्षर वृद्धिको प्राप्त हो, अथवा अनुस्वार, विसर्ग आदिका फेर पड़ जाय, तो उस मन्त्रके साथ यदि प्रणवका संयोग रहे, तो सब प्रकारके दोषोंकी शान्ति हो जाया करती है” इस प्रकारकी महिमा कीर्तन द्वारा पूज्यपाद महर्षिजीने संक्षेपरूपसे ॐकारके तीनों भावोंका वर्णन किया है ।

अतः प्रणव ब्रह्ममन्त्र होनेके कारण निष्काम कर्ममें ही इसका प्रयोग होता है और निष्कामव्रतपरायण सर्वत्यागी सन्यासीगण ही इसका जप किया करते हैं । यदि च द्विजातिमात्रका ही इसमें पूर्णाधिकार है तथापि केवल प्रणवका जप सकामी गृहस्थोंके लिये हितकर नहीं है और और मन्त्रोंके साथ मिलाकर ही इसका जप करना उनके लिये उचित है । सकाम मन्त्रोंके साथ निष्काम मन्त्र प्रणवके जप करनेसे अनन्त फल होता है और समस्त मन्त्र निर्दोष होकर साधकको अभीष्ट फल प्रदान किया करते हैं । शास्त्रकारोंने भी इसीलिये “मन्त्राणां प्रणवः सेतुः” अर्थात् प्रणव समस्त मन्त्रोंका सेतु स्वरूप है, ऐसा कहकर वर्णन किया है ।

संकल्प ।

सन्ध्याके संकल्पके विषयमें बहुत ही मतभेद है । किसी देशमें संकल्प नहीं करते और किसी देशमें करते भी हैं । जो नहीं करते हैं, उन लोगोंकी युक्ति यह है कि नित्यकर्ममें संकल्पकी आवश्यकता नहीं है । काम्य और नैमित्तिक कर्ममें ही संकल्प किया जाता है । सन्ध्या जब नित्यकर्म है, तब उसमें संकल्प करनेकी कोई जरूरत नहीं है । अपर पक्षमें—बृहद्ध्यमका एक प्रमाण लेकर कहते हैं कि संकल्प करना उचित है, प्रमाण यह है—

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्प-सम्भवाः ।

व्रतं नियमधर्मौ च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥

अर्थात् संकल्पसे ही, व्रत, नियम, यज्ञादि समस्त कार्य होते हैं । इस प्रमाणसे यही निश्चय होता है, कि व्रतादि नैमित्तिक या काम्य कर्ममें सङ्कल्प अवश्य उचित है । परन्तु नित्य कर्म प्रतिदिन अवश्य कर्तव्यतया विहित होनेके कारण उसमें सङ्कल्प न करनेसे कोई हानि नहीं है और जो प्रमाण मिलता है—

सङ्कल्पेन विना राजन् यत् किञ्चित् क्रियते नरैः ।
फलञ्चाल्पालपकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत् ॥

अर्थात् विना सङ्कल्पसे जो कुछ कार्य किया जाता है—उससे बहुत ही थोड़ा फल मिलता है—बल्कि, धर्मका भी आधा क्षय हो जाता है । इस प्रमाणको नैमित्तिक और काम्य विषयमें लगाना उचित है और कुछ शास्त्रकारोंने ऐसा समाधान किया भी है । क्योंकि नित्यकर्ममें फलाकांक्षा नहीं रहती है । जिसमें फलकी वासना नहीं है, उसमें फल थोड़ा ही हो और बहुत ही हो उसका विचार करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है । ऐसा होनेपर भी कोई यदि सङ्कल्प करना चाहे उससे 'अधिकस्याधिकं फलं' इस नियमके अनुसार फलाधिक्य ही होगा, अतः जिसकी जैसी इच्छा हो, कर सकते हैं—सङ्कल्प इस प्रकार है—

श्रीविष्णुः विष्णुरों तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीयपराद्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे
वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बुद्वीपे श्री-
भारतखण्डे आर्यावर्तके देशान्तरगते पुण्यक्षेत्रे (अमुक) कलेर्गताब्दे (अमुक)
अयने (अमुक) ऋतौ (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) तिथौ (अमुक)
वासरे (अमुक) गोत्रोत्पन्नो (अमुक) नामाहं ममोपात्तदुरितक्षय-
द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः (अथवा मध्याह्न, या सायं) सन्ध्योपासना-
कर्म करिष्ये ।

सामवेदीय सन्ध्या ।



आसनशुद्धि जलशुद्धि आचमनादि करके नीचे लिखे हुए मन्त्रको पढ़कर मस्तकपर जल छिड़कना चाहिये ।

(मार्जन)

ॐ शन्न आपो धन्वन्याः शमनः सन्तु नृप्याः ।

शन्नः समुद्रिया आपः शमनः सन्तु कूप्याः ॥ १ ॥

(अन्वय) शन्न इति । धन्वन्याः (मरुदेशसे उत्पन्न) आपः (जल) नः (हमलोगोंका) शं (मङ्गल) करे । तथा (उसी प्रकार) नृप्याः (जलमय देशसे उत्पन्न) आपः (जल) शमनः (कल्याणप्रद) सन्तु (हो) समुद्रियाः (समुद्रसे उत्पन्न) आपः (जल) नः (हम लोगोंका) शं (कल्याण करे) कूप्याः (कूपसे उत्पन्न) आपः (जल) शमनः (कल्याणप्रद) सन्तु (हो) ॥१॥

(अनु०) मरुदेशसे उत्पन्न जल हम लोगोंका कल्याण करे, उसी प्रकार जलमय देशसे उत्पन्न जल हमलोगोंके कल्याणप्रद हो । समुद्रसे उत्पन्न जल हमलोगोंका कल्याण करे और कूपसे उत्पन्न जल हम लोगोंको मंगलप्रद हो ॥१॥

ॐ हुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
 पूतं पवित्रेणोवाज्यमापः शुद्धन्तु मैनसः ॥ २ ॥
 ॐ आपो हि घ्रा मयोभुव स्ता न ऊर्ज्जे दधातन ।
 महे रणाय चक्षसे ॥ ३ ॥

हुपदादिति । स्विन्नः (घामसे पीड़ित) हुपदात् (वृक्षमूलमें जाकर) इव (जैसा) मुमुचानः (घामसे मुक्त होता है) स्नातः (स्नान करने पर) इव (यथा) मलात् (मलसे मुक्त होता है) । इव (जैसा) आज्यं (घृत) पवित्रेण (संस्कारसे) पूतं (पवित्र) होता है, तथा आपः (उसी प्रकार जल) मा (मुझको) पुनसः (पापसे) शुद्धन्तु (पवित्र करे) ॥ २ ॥

आपोहिष्टेति । हे आपो (हे जल !) हि (जिसलिये आप) मयोभवः (सुखदायी) स्थ (होते हैं) ता (इसलिये) नः (हमलोगोंको) ऊर्ज्जे (अन्नके लिये) दधातन (अधिकारी करो) (और भी) महे (श्रेष्ठ) रणाय (रमणीक) चक्षसे (दर्शनके लिये) अधिकारी बनाओ ॥ ३ ॥

घामसे ' पीड़ित मनुष्य जैसे वृक्षके नीचे जानेसे स्वस्थ हो जाते हैं, स्नान करनेसे जैसे शरीरका मैल साफ हो जाता है, संस्कार करनेसे जिस तरह घृत पवित्र हो जाता है—उसी प्रकार जल मुझको पापसे पवित्र करे ॥ २ ॥

हे जल ! जैसे आप सुखदायी हो वैसे ही मुझे अन्नादि वस्तुओंको भोग करने तथा महत् रमणीक ब्रह्मदर्शनके लिये भी अधिकारी करो ॥ ३ ॥

ॐ यो वः शिवतमो रस स्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥ ४ ॥

ॐ तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥ ५ ॥

ॐ ऋतश्च सत्यश्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत ।

ततो राज्यजायत ततो समुद्रोऽर्णवः ॥ ६ ॥

योव इति । हे आपः (हे जल !) वः (आपका) यो रसः (जो रस) शिवतमः (कल्याणमय) तस्य (उस रसका) इह (इस संसारसे) नः (हम लोगोंको) भाजयत (अधिकारी करो) आप कैसे हैं ? उशतीः (हित करने वाली) मातरः इव (माता की तरह) ॥ ४ ॥

तस्माइति । हे आपः (हे जल !) वः (तुम्हारा) तस्मै (उस रसमें) अरं (वृत्ति) गमामः (प्राप्त करें) यस्य (जिस रससे) क्षयाय (सारे संसारको) जिन्वथ (वृत्त करते हो) नः (हम लोगोंको) च (उसी रससे) जनयथा (वृत्त करो) ॥ ५ ॥

ऋतञ्चेति । ऋतं (एकाक्षर) सत्यं (ज्ञानके स्वरूप परब्रह्म थे) इससे प्रलयकालकी अवस्था सूचित होती है । ततः

पुत्रपर हित करने वाली माता जिस प्रकार अपने स्तनका दूध पिलाकर पुत्रको सुख देती है, हे जल ! तुम भी उसी प्रकार मुक्तको इस लोकमें अपने कल्याणमय रस भोगनेमें अधिकारी करो ॥ ४ ॥

हे जल ! तुम जिस रससे सारे संसारको वृत्त करते हो, उसी रससे हम लोगोंको भी वृत्त करो ॥ ५ ॥

(प्रलयके समय केवल) एकाक्षर परब्रह्म ही थे (उस समय) सब अन्धकारमय था । उसके बाद जीवोंके पूर्व संस्कारोंके अनुसार जलमय समुद्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

ॐ समुद्रादणवादधि संवत्सरोअजायत ।
 अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ॥
 ॐ सूर्याचन्द्रमसौ धाता, यथापूर्वमकल्पयत् ।
 दिवश्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः ॥ ७ ॥

(उसी अवस्थामें) रात्री अजायत (रात्रिकी उत्पत्ति हुई) अर्थात् उस समय सब अन्धकारमय था । ततः (उसके बाद) अभीष्टात् (प्रलयके समय जो लुप्त था) तपसः (ऐसे जीवोंके पूर्व संस्कारके अनुसार) अणवः (जलमय) समुद्रः (समुद्र) अध्यजायत (उत्पन्न हुआ) ॥ ६ ॥

समुद्रादिति । ततः (उसके बाद) समुद्रात् अणवात् (जलमय समुद्रसे) धाता (सृष्टिकर्ता) अजायत (उत्पन्न हुए) धातां कैसेः—मिषतः (प्रकाशमान्) विश्वस्य (विश्वके) वशी (प्रभु) असौ (वह धाता) यथापूर्वं (प्रलयके समय जो जैसे थे उस क्रमके अनुसार) अहो-रात्राणिविदधत् (दिवा और रात्रिके कर्त्ता) सूर्याचन्द्रमसौ (सूर्य और चन्द्रमाके) अकल्पयत् (सृजन किया) ततः (उसके बाद) संवत्सरः (सम्बत्सर) अजायत् (हुए) अथ (उसके बाद) दिवं (स्वर्ग) पृथिवीं (पृथिवी) अन्तरिक्षं (आकाश) स्वः (नक्षत्रलोकके उपरस्थित स्वर्गलोक) ॥ ७ ॥

जलमय समुद्रसे दृश्यमान विश्वके रचयिता ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई । ब्रह्माजीने दिनके कर्त्ता सूर्यको और रात्रिके कर्त्ता चन्द्रमाको उत्पन्न किया और दिन रात्रिसे सम्बत्सर हुए । उसके बाद उन्होंने पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और महदादि लोककी रचना की ॥ ७ ॥

(प्राणायाम)

ॐकारस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो-
वर्णः सर्वकर्मरम्भे विनियोयः ॥ ८ ॥ ❀

(अनु०) ॐकारके ऋषि-ब्रह्मा, छन्द-गायत्री, वर्ण-शुक्ल और देवता-अग्नि हैं । प्रत्येक कर्मके प्रारम्भमें इस मन्त्रका प्रयोग होता है ॥ ८ ॥

❀ महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा हैः—

आर्षं छन्दश्च देवतयं विनियोगस्तथैव च ।
वेदितव्यः प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ॥
अविदित्वा तु यः कुर्यात् याजनाध्यापनं जपम् ।
होममन्तर्जलादीनि तेभ्योऽल्यल्पफलं भवेत् ॥
येन यद्विष्णा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च तेन वै ।
मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तमृषिभावस्तदात्मकः ॥
छादनाच्छन्द उद्दिष्टं वाससी वाथवाकृते ।
आत्मा तु छादितो देवै र्मृत्योर्भीतैस्तु वै पुरा ॥
यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता ।
तदाकारं भवेत्तस्य देवतं देवतोच्यते ॥
पुराकाले समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थमेव च ।
अनेनेदन्तु कर्तव्यं विनियोगः स उच्यते ॥

(अ०) प्रत्येक मन्त्रके ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग ब्राह्मणोंको जानना चाहिये । जो कि इन सबको नहीं जानकर मन्त्रपाठ करते हैं, उनको बहुत ही कम फल मिलता है । जो ऋषि जिस मन्त्रके द्रष्टा अथवा जिस मन्त्रसे सिद्ध हुए हैं उनको उस मन्त्रका द्रष्टा कहते हैं । जिससे मन्त्रोंकी रचना होती है, उसको छन्द कहते हैं । जिन जिन मन्त्रोंसे जिन जिन देव-ताओंकी प्राप्ति होती है, वे उन उन मन्त्रोंके देवता कहलाते हैं । जिस काम-के लिये मन्त्रोंका प्रयोग होता है, उसको विनियोग कहा जाता है ।

ॐ सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्-
बृहतीपङ्क्तिस्त्रिष्टुप् जगत्यश्छन्दःसि, अग्निवायुसूर्यवरुण-
बृहस्पतीन्द्र विश्वेदेवा देवताः प्राणायामे विनियोगः ॥६॥

ॐ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता
देवता प्राणायामे विनियोगः ॥ १० ॥

ॐ गायत्रीशिरसः प्रजापतिऋषिर्ब्रह्मवाय्वग्निसूर्याश्व-
त्सो देवता प्राणायामे विनियोगः ॥ ११ ॥

इसके बाद अपने चारों ओर जलकी धारा देकर उस धाराको अग्नि-
मय दीवार समझते हुए दाहिने हाथके अंगूठेसे नासिकाके दाहिना छिद्र
बन्दकर बायें छिद्रसे वायु खींचते हुए नाभौः—

ओं रक्तवर्णं चतुर्मुखं द्विभुजं अक्षसूत्र कमण्डलुकरं
हंसासनारूढं ब्रह्माणं नाभिदेशे ध्यायन्—अर्थात् नाभिमें रक्तवर्ण

(भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य) इन सातों व्याहृतियोंके
प्रजापति ऋषि, (यथाक्रमसे) गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती. पङ्क्ति-
त्रिष्टुप् और जगती छन्द, अग्नि, वायु, सूर्य, वरुण, बृहस्पति, इन्द्र और
विश्वदेव वे यथाक्रमसे देवता और प्राणायाममें इन सबोंका प्रयोग
होता है ॥९॥

गायत्रीके विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द, सविता देवता और प्राणा-
याममें उसका प्रयोग होता है ॥ १० ॥

गायत्रीके सिर अर्थात् “आपोज्योति” इत्यादि मन्त्रोंके प्रजापति ऋषिः
ब्रह्म, वायु, अग्नि और सूर्य देवता और प्राणायाममें इसका प्रयोग
होता है ॥ ११ ॥

*इसका छन्द नहीं होता है। शास्त्रकारोंने कहा है—‘यजुष्य्वा छन्दो
नास्ति ।’ यजुका छन्द नहीं होता है।

चतुर्भुज, द्विभुज, एक हस्तमें जयमाल और दूसरे हस्तमें कमण्डलु. हंसके ऊपर स्थित ब्रह्माजीका ध्यान करते हुए (ऐसी चिन्ता करे)

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः
ओं सत्यं । ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो
यो नः प्रचोदयात् ॥ ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः
स्वरोम् ॥ १२ ॥

पहलेकी तरह दाहिने नासिका बन्द रखकर अनामिका और कनिष्ठाके द्वारा बायें नासिकाको भी यन्द करके श्वासको रोककर कुम्भक करते हुए—

हृदिनीलोत्पलदलप्रभं चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापद्महस्तं
गरुडारूढं केशवं ध्यायन्—अर्थात् हृदयमें नील कमलकी तरह
कमनीय, चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले, गरुड़के उपर

भूः (पृथिवी) भुवः (अन्तरिक्ष) स्वः (स्वर्ग) महः (महर्लोक) जनः
(जनलोक) तपः (तपोलोक) सत्यं (सत्यलोक) तत् (उस) सवितुः
(सूर्यके) वरेण्यं (श्रेष्ठ) भर्गः (तेज) देवस्य (दीप्तिमान् सूर्यके) धीमहि
(चिन्ता करते हैं) जो भर्गः (जो तेज) नः (हम लोगोकी) धियः (बुद्धिको)
प्रचोदयात् (प्रेरणा करते हैं) फिर कैसे भर्ग ? आपः (कारण जल-स्वरूप)
ज्योतिः (तेजस्वरूप) ब्रह्म (ब्रह्मस्वरूप) रसः (रसस्वरूप) अमृतं
(अमृतस्वरूप) भूर्भुवः स्वः (ब्रह्मा विष्णु रुद्रके स्वरूप) ॥ १२ ॥

(अनु) जो भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्य इन सातों
लोकोंमें व्याप्त हैं, जो जगत् प्रसवकारी दीप्तिमान् सूर्यके तेजस्वरूप हैं,
जो हम लोगोकी बुद्धिमें सर्वदा प्रेरणा करते हैं, और जो जलस्वरूप,
ज्योतिस्वरूप, रसस्वरूप अमृतमय और ब्रह्मविष्णु आदि परब्रह्मके स्वरूप
हैं उनका हम चिन्तन करते हैं ॥ १२ ॥

स्थित, विष्णुकी चिन्ता करते हुए पहिलेकी तरह निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करें ।

ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं ।
ॐतत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

धियो यो नः प्रचोदयात् ।

ॐ आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥१३॥

इसके बाद दाहिने नासिकासे अंगुठेको धीरे धीरे हटाकर वायुत्या-
गरूप रेचक करते हुए—

ललाटमें—श्वेतं द्विभुजं त्रिशूलढमरूकरं अर्द्धचन्द्र-
विभूषितं त्रिनेतं वृषभारूढं शम्भुं ध्यायन्—अर्थात् ललाटमें—
श्वेतवर्ण, द्विभुज, त्रिशूलढमरूधारी, अर्द्धचन्द्रसे भूषित, त्रिनयन वृषके
उपर स्थित महादेवको ध्यान करते करते—पहिलेकी तरह भूःसे लेकर
स्वरो पर्यन्त पढ़ना चाहिये । यथाः—

ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं
ॐतत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

धियो यो नः प्रचोदयात् ।

ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥१४॥

(आचमन)

दाहिने हाथमें जल लेकर प्रातःसन्ध्यामें इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये ।

सूर्यश्च मेति मन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिः प्रकृतिरब्यन्दापो

देवता आचमने विनियोगः । ओं सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युप-
तयश्च । मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां ॥ यद्रात्र्या पाप-
मकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यांपद्भ्यामुदरेण शिरसा ।
रात्रिस्तदवलुम्पतु, यत्किञ्च दुरितं मयि । इदमहं माममृत-
योनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥१५॥

सूर्यश्चेति—सूर्यश्च (सूर्य) मा (हमको) मन्यु (यज्ञ)
मन्युपतयः (यज्ञपतियों) मन्युकृतेभ्यः (असम्पूर्ण यज्ञकृत) पापेभ्यः
(पापसे) रक्षन्तां (रक्षा करें) । यत् (जो) रात्र्या (रात्रिमें) पापं
(पाप) अकार्षम् (किया है) मनसा (मनसे) वाचा
(वाक्यसे) हस्ताभ्यां (दोनों हाथोंसे) पद्भ्यां (दोनों पैरोंसे) उदरेण
(उदरसे) शिरसा (लिंगसे) रात्रिः (रात्रि) तत् (उस पापको)
अवलुम्पतु (खंडन करें) यत् किञ्च (जो कुछ) दुरितं (पाप) मयि
(मुझमें है) इदं (उस पापको) अहं (हम) मां (मुझको भी)
अमृतयोनौ (अमृतके आधार) सूर्ये (सूर्यात्मक) ज्योतिषि (ज्योतिमें)
जुहोमि (क्षेपण करता हूं) स्वाहा (भस्म हो जाय) ॥ १५ ॥

सूर्यश्चमा इत्यादि मन्त्रके ब्रह्माक्षरि प्रकृतिछन्द, जलदेवता और
आचमनमें इसका प्रयोग होता है । सूर्य, यज्ञ और यज्ञपति इन्द्रादि
देवगण असमाप्त यज्ञकृत पापसे मेरी रक्षा करें । रात्रिके समय,
मनसे, वचनसे, दोनों हाथोंसे, पैरोंसे, उदरसे, लिंगसे मैंने जो कुछ
पाप किया दिवाकी अधिष्ठात्री देवता वे सब नष्ट करें । मुझमें
जो कुछ पाप है उस पापको और उस पापके कर्त्ता अपनेको भी
सूर्यात्मक ज्योतिमें (अर्थात् स्वप्रकाश परब्रह्ममें) क्षेपण करता हूं । वे
सब पाप भस्म हो जावें ॥ १५ ॥

मध्यान्ह सन्ध्यामें इस मन्त्रको पाठ करते हुए आचमन करना चाहिये:—

आपः पुनन्त्विति मन्त्रस्य विष्णु ऋषिरनुष्टुप् छन्दः
आपो देवता आचमने विनियोगः ।

ओं आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु मां ।

पुनन्तु ब्रह्मणस्पति ब्रह्म पूता पुनातु मां ॥

यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च, यद्वा दुश्चरितं मम ।

सर्वं पुनन्तु मामापोऽसताञ्च प्रतिग्रहं स्वाहा ॥ १६ ॥

आपः (जल) पुनन्तु (पवित्र करें) पृथिवीं (पृथिवीको) पृथ्वी (पृथिवी) पूता (पवित्र होकर) पुनातु (पवित्र करें) मां (मुझको) पुनन्तु (पवित्र करें) ब्रह्मणस्पति (परमात्माको) ब्रह्म (ज्ञान) पूता (पवित्र होकर) पुनातु (पवित्र करें) मां (मुझको) यत् उच्छिष्टम् (जूठा भोजन) अभोज्यं (अभक्ष्य भक्षण) यद्वा (और भी जो कुछ) दुश्चरितम् (असदाचरण) असताञ्च (असतके) प्रतिग्रह (दानादि ग्रहण) मम (मेरा है) । सर्वं (सब कुछ) पुनन्तु (पवित्र करें) मां (मुझको) आपो (जल) ॥ १६ ॥

आपः पुनन्तु इत्यादि मन्त्रके विष्णु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, जल देवता और आचमनमें इसका प्रयोग होता है । जल पृथिवीको पवित्र करें और पृथ्वी पवित्र होकर मुझको पवित्र करें । जल ज्ञानके आश्रय परमात्माको पवित्र करें और वह ज्ञान पवित्र होकर मुझको पवित्र करें । जूठा भोजन, अभक्ष्यभक्षण, असत्य आचरण और असतके प्रतिग्रहसे जो कुछ पाप मुझमें हुआ है उन सब पापोंको दूर करके जल मुझको पवित्र करें ॥ १६ ॥

सायं सन्ध्यामें इस मन्त्रको पढ़ते हुए आचमन करना होगा ।

अग्निश्चमेति मन्त्रस्य रुद्र ऋषिः प्रकृतिश्छन्द

आपो देवता आचमने विनियोगः ।

ओं अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च

मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां ।

यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा

हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना ।

अहस्तदवलुम्पतु, यत् किञ्च दुरितं मयि

इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥१७॥

अह्ना (दिवसमें) यत् पापमकार्षं (जो पाप किया) अहः (दिवा) तत् (उस पापको) अवलुम्पतु (खण्डन करें) इदं (मुझे जो कुछ पाप है) अहं (हम) मां (उस पापका कर्त्ता मुझको) अमृतयोनौ (अमृतके आधार) सत्ये (सत्य स्वरूप) ज्योतिषि (ज्योतिमें) जुहोमि (क्षेपण करता हूँ) और और मन्त्रका अर्थ सूर्यश्च मन्त्रमें देखें ॥ १७ ॥

अग्निश्च मा इत्यादि । मन्त्रके रुद्र ऋषि, प्रकृति छन्द, जल देवता और आचमनमें इसका प्रयोग होता है । अग्नि, यज्ञ और यज्ञपति-इन्द्रादि देवगण असम्पूर्ण यज्ञकृत पापसे मेरी रक्षा करें । मैंने दिवा-में मनसे, वचनसे, दोनों हाथोंसे, दोनों पैरोंसे, उदर और लिंगसे जो कुछ पाप किया है दिवाकी अधिष्ठात्री देवता उस पापको नष्ट करें । मेरे शरीरसे जो कुछ पाप है, उन पापोंको और पापके कर्त्ता अपनेको हम अमृतके आधार सत्यस्वरूप परब्रह्ममें क्षेपण करते हैं, वे सब पाप भस्म हो जावें ॥ १७ ॥

(पुनर्मार्जन)

(१) ओं (२) भूर्भुवः स्वः (३) तत् सवितुर्वरे-
 एयं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ।

इस मन्त्रसे तीन बार सिरमें जल छिड़कना होगा । इसके बाद नीचे लिखे हुए मन्त्रोंसे फिर तीन बार जल छिड़कना होगा ।

आपोहिष्ठेति ऋकत्रयस्य सिन्धुद्वीपऋषि गायत्रीच्छ-
 न्द आपो देवता मार्जने विनियोगः । ओं आपोहिष्ठा-
 मयोभुवस्तान ऊर्जो दधातन महेरणाय चक्षसे । ओं योवः
 शिवतमो रसस्तस्य भाजयते हनः । उशतीरिव मातरः ।
 ओं तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपो जन-
 यथा चनः ॥ १८ ॥

(अघमर्षण)

एक चुल्लू जल नासिकाके अग्रभागमें लगाकर—

ऋतमित्यस्य अघमर्षण ऋषि रनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तो
 देवता अश्वमेधावभृथे विनियोगः ।

ओं ऋतश्च सत्यश्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।

ततो राज्यजायत, ततोसमुद्रोऽर्णवः ।

आपो हिष्ठा इत्यादि मन्त्रके सिन्धुद्वीप ऋषि, गायत्री छन्दः जल देवता और मार्जनमें इसका प्रयोग होता है । (मन्त्रोंका अर्थ पहले ही किया गया ॥१८॥

ऋतमित्यादिमन्त्रके अघमर्षण ऋषि, अनुष्टुप्छन्द, भाववृत्तो

ओं समुद्रादर्णवादधि, सम्बत्सरोऽजायत ।
 अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य षिषतोवशी ।
 ओं सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
 दिवश्च पृथिवीश्चान्तरीक्षमथो स्वः ॥१६॥

इस मन्त्रके द्वारा अघमर्पण करे । उसकी विधि यह है कि, दक्षिण करमें जल लेकर प्राणायामकी रीतिपर दक्षिण नासिका बंद करते हुए वाम नासिकासे उस जलका प्राण लेवे । तदनन्तर कुम्भक करते हुए मनमें अघमर्पण मन्त्रका पाठ करके और तत्पश्चात् दक्षिण नासिकासे देहस्थित पापसमूहको निकालते हुए जलमें डालें । तदनन्तर उस जलको बायें तरफ पृथिवीपर बलपूर्वक डाल दें ।

इसके बाद हाथ धोकर आचमन करते हुए सूर्यके सम्मुख खड़े होकर पुष्प चन्दन आदि मिश्रित जलसे अर्घ्यप्रदान करना चाहिये ।

(सूर्योपस्थान)

ओं भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि ।
 धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इस गायत्री मन्त्रका तीन बार पढ़कर सूर्यकी ओर तीन अंजलि जल देना चाहिये । मध्याह्न सन्ध्यामें एक बार गायत्री पढ़ते हुए एक अंजलि जल देना होगा ।

इसके बाद दोनों चरणोंके अग्र भागसे सूर्यदेवके सन्मुख खड़े हो प्रातःकाल और सायंकालमें बढ़कर और मध्याह्नमें ऊर्ध्वबाहु हो, नीचे लिखे मन्त्रका पाठ करें ।

(ब्रह्मा) देवता और अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नानकार्यमें प्रयोग होता है । मन्त्रोंकी व्याख्या पहले ही हो चुकी ॥ १९ ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्वच्छ्रुषिर्गायत्रीछन्दः सूर्योदेवता-
सूर्योपस्थाने विनियोगः । ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति
केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २० ॥

चित्रमित्यस्य कौत्सच्छ्रुषि त्रिष्टुप्छन्दः सूर्योदेवता
सूर्योपस्थाने विनियोगः । ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवी अन्तरीक्षं,
सूर्यं, आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ २१ ॥

उदुत्यमिति । त्वं (उस) देवं (प्रकाशमय) जातवेदसं (तेजो-
मय) सूर्यं (सूर्यको) केतव (किरणे) उद्वहन्ति (वहती हैं) दृशे
(प्रकाशके लिये) विश्वाय (विश्वको) ॥ २० ॥

चित्रमिति—चित्रं (आश्चर्यरूपसे) देवानां (देवताओंके) अनीकं
(समष्टिरूप) मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः (मित्र वरुण और अग्नि इन
तीन देवताओंके प्रकाशक) द्यावा पृथिवी (स्वर्ग और पृथिवी)
अन्तरीक्षं (आकाश) आप्रा (पूर्ण करनेवाले) तस्थुषः (स्थावर)
जगतः (जंगम) आत्मा (आत्मस्वरूप) सूर्यः (सूर्य) उदगात्
(उदित हुए) ॥ २१ ॥

उदुत्यमित्यादि मन्त्रके प्रस्कण्व ऋषि, गायत्री छन्द, सूर्यदेवता
सूर्यकी उपासनामें इसका प्रयोग होता है । जगतके प्रकाशके लिये
किरणें प्रकाशमय तेजस्वरूप सूर्यको वहन करती है ॥ २० ॥

चित्रमित्यादि मन्त्रके कौत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सूर्यदेवता और
सूर्यकी उपासनामें इसका प्रयोग होता है । जो कि मित्र, वरुण और
अग्निके प्रकाशक, देवताओंके समष्टिरूप, स्थावर, जंगमके आत्मा, स्वर्ग मर्त्य
और आकाशको अपनी किरणोंसे प्रकाशित करते हैं, ऐसे सूर्य उदित
हुए हैं ॥ २१ ॥

ओं नमो ब्रह्मणे, नमो ब्राह्मणेभ्यो, नमो आचार्येभ्यो,
नम ऋषिभ्यो, नमो देवेभ्यो, नमो वेदेभ्यो, नमो वायवे च,
मृत्यवे च, विष्णवे च, नमो वैश्रवणाय चोपजायत ॥२२॥

(गायत्रीजप)

कृताञ्जलि हो गायत्रीका आवाहन करना चाहिये—

ओं आयाहि वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि । गायत्रि
छन्दसां मातर्ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते ॥ २३ ॥

इसके बाद न्यास करना चाहिये—ॐ (कहकर हृदय) ॐ भूः
(कहकर शिर) ॐ भुवः (कहकर शिखा) ॐ स्वः (कहकर समस्त
शरीर) ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्)
ऐसा कहकर दक्षिण करतलसे वाम करतल और दक्षिण करपृष्ठसे वाम
करपृष्ठको स्पर्श करना होगा ।

गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवता
जपोपनयने विनियोगः ॥ २४ ॥

ब्रह्मा, ब्राह्मणगण, वेदाध्यापकगण, ऋषिगण, गुरुगण, देवगण, वेद-
गण, वायु, मृत्यु, विष्णु, वैश्रवण और वंशब्राह्मणप्रवक्ता ऋषियोंको प्रणाम
करते हैं ॥ २२ ॥

हे वरदायिनि ! हे देवि ! हे अक्षरत्रयस्वरूपे ! हे ब्रह्मवादिनि ! हे
वेदमातः ! हे परब्रह्मोद्भवे गायत्रि ! आप आइये, आपको प्रणाम
करते हैं ॥ २३ ॥

गायत्रीके-विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द, सविता देवता, जप और
उपनयनमें इसका प्रयोग होता है ॥ २४ ॥

(प्रातःकालमें गायत्रीध्यान)

ओं कुमारीमृग्वेदयुतां ब्रह्मरूपां विचिन्तयेत् । हंस-
स्थितां कुशहस्तां सूर्यमण्डलसंस्थिताम् ॥ २५ ॥

(मध्याह्न कालमें)

ओं मध्याह्ने विष्णुरूपाञ्च तादर्यस्थां पीतवाससं ।
युवतीञ्च यजुर्वेदां सूर्यमण्डलसंस्थिताम् ॥ २६ ॥

(सायंकालमें)

सायाह्ने शिवरूपाञ्च वृद्धां वृषभवाहिनीम् । सूर्य-
मण्डलमध्यस्थां सामवेदसमायुताम् ॥ २७ ॥

(गायत्रीजप)

ओं भूर्भुवः स्वः, तत् सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य
धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ओं ॥ २८ ॥

प्रातःकालमें गायत्रीको कुमारी, ऋग्वेद धारिणी ब्रह्मरूपा हंसके उपर
स्थिता, कुशहस्ता और सूर्यमण्डलमें स्थिता ऐसा ध्यान करें ॥ २५ ॥

मध्याह्नकालमें—युवती, यजुर्वेदको धारण करनेवाली, विष्णुरूपा, गरु-
डारूढ़ा, पीतवसना और सूर्यमण्डलमें स्थिता इस प्रकार चिन्तन
करें ॥ २६ ॥

सायंकालमें—वृद्धा सामवेदको धारण करनेवाली, शिवरूपा, बैलके
ऊपर सवारी करनेवाली और सूर्यमण्डलमें संस्थिता ऐसी चिन्ता
करें ॥ २७ ॥

इस मन्त्रका जप कमसे कम १०८ बार अवश्य करना चाहिये । इससे अधिक जितना हो सके उतना ही अच्छा है । असमर्थ होनेपर १० बार करना चाहिये । इससे कम नहीं होना चाहिये । प्रातः सन्ध्यामें हाथको चितकर, मध्याह्न सन्ध्यामें हृदयकी ओर रखकर और सायं सन्ध्यामें हाथको उलटकर जप करना चाहिये ॥

(गायत्री विसर्जन)

ॐ महेश्वदनोत्पन्ना विष्णोर्हृदयसम्भवा ब्रह्मणा
समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया ॥ २६ ॥

इस मन्त्रसे एक अंजलि जल देकर गायत्री देवीका विसर्जन करे ।

भूः (पृथिवी) भुवः (आकाश) स्वः (स्वर्ग) तत् (उस)
सवितुः (सर्वान्तर्यामी विज्ञानज्योतिर्मय सृष्टिभावोत्पादक परमात्माका)
वरेण्यं (सर्वप्राणियोंसे पूजने योग्य) भर्गः (पापनाशकारी तेज)
देवस्य (जगदीश्वरका) धीमहि (ध्यान करते हैं) धियो (बुद्धिको)
यः (जो) नः (हमारी) प्रचोदयात् (प्रेरणा किया करते हैं) ॥ २८ ॥

जो कि स्वर्ग मर्त्य आकाशरूप—स्थायर जंगमात्मक त्रिभुवनके स्वरूप सर्वान्तर्यामी विज्ञानज्योतिर्मय, सृष्टिस्थिति संहार करनेवाले, सर्वप्राणियों-से पूजने योग्य, पापनाशकारी सूर्यमण्डलमध्यवर्त्ति तेजके प्राणस्वरूप हैं, उन परमात्मा जगदीश्वरकी [वे ही हम हैं इस भावसे] चिन्ता करें । जो कि हमारी बुद्धिको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें प्रेरणा किया करते हैं ॥ २८ ॥

हे देवि ! महेश्वरके मुखसे आपकी उत्पत्ति हुई है, आप विष्णुके हृदयमें रहती हैं और ब्रह्मा भी आपको जानते हैं, आप अब अपनी इच्छा-के अनुसार गमन करें ॥ २९ ॥

ॐ जप करनेके समय मौन होना चाहिये ।

ॐ अनेन जपेन भगवन्तावादित्यशुक्रौ प्रीयेतां । ॐ
आदित्यशुक्राभ्यां नमः ॥ ३० ॥

इस मन्त्रसे भी एक अञ्जलि जल देना चाहिये ।

(आत्मरक्षा)

दक्षिण हाथके अंगूठेसे दक्षिण कर्णके पिछले भागको स्पर्श करके—

जातवेदस इत्यस्य काश्यप ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दोऽग्निर्देवता
आत्मरक्षायां जपे विनियोगः । ॐ जातवेदसे सुनवाम
सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि
विश्वा, नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ३१ ॥

इस मन्त्रके द्वारा अपने मस्तकपर जल सिञ्चन करना होगा—

जात वेदसे इति । जातवेदसे (अग्निके लिये) सोमं (सोमरस)
सुनवाम (हवन करें) अर्थात् सोमयज्ञ करते हैं । अरातीयतः
(हमारे शत्रुओंके) वेदः (धन) निदहाति (निःशेषरूपसे दहन
करें) सः (वह) अग्निः (अग्नि) नः (हम लोगोंको) विश्वा (समस्त)
दुर्गाणि (दुःखप्रद) नावा (नौकासे) सिन्धुं इव (सिन्धुकी तरह)
दुरिता (पापोंसे) अतिपर्षत (उद्धार करें) ॥ ३१ ॥

इस जपसे भगवान् आदित्य और शुक्र प्रसन्न होंवें । आदित्य
और शुक्रको जल देकर तृप्त करते हैं ॥ ३० ॥

जातवेदसे इत्यादि मन्त्रके काश्यप ऋषि, त्रिष्टुप् छन्दः अग्नि
देवता, आत्मरक्षाके जपमें इसका प्रयोग होता है । हम अग्निकी तृप्तिके
लिये सोमयागका अनुष्ठान करते हैं । वही अग्नि हमारे शत्रुके धनको
निःशेषरूपसे भस्म करें । जैसे नौकासे नदीके पार जा सकते हैं,
ऐसे ही अग्नि समस्त दुःखोंसे और पापोंसे मेरी रक्षा करें ॥ ३१ ॥

(रुद्रोपस्थान)

अंजलिबद्ध हो—

ऋतमित्यस्य कालाग्निरुद्र ऋषिरनुष्टुप छन्दो रुद्रो देवता, रुद्रोपस्थाने विनियोगः ।

ॐ ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिंगलं । ऊर्ध्वलिंगं विरूपाक्षं विश्वरूपं नमो नमः ॥ ३२ ॥

ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ विष्णवे नमः ।

ॐ रुद्राय नमः । ॐ वरुणाय नमः ॥ ३३ ॥

प्रत्येक मन्त्रसे एक एक अंजलि जल देना चाहिये ।

(सूर्यार्घ्य)

अर्घ्यद्रव्य अथवा उसके अभावमें जल लेकर—

ऋतमिति । ऋतं (एकाक्षरमय) सत्यं (ज्ञानमय) परं ब्रह्म (परब्रह्म) पुरुषं (भक्तोंके लिये उमामहेश्वरके स्वरूप) कृष्णपिंगलं (दक्षिणभागमें तमोके अधिष्ठाता इसलिये कृष्ण और वाम भागमें पार्वती इसलिये पिंगल वर्ण हैं) ऊर्ध्वलिंगं (ऊर्ध्वरेता) विरूपाक्षं (त्रिनयन) विश्वरूप (विश्वके स्वरूप) नमः (नमस्कार करते हैं) ॥ ३२ ॥

(अ०) ऋतमित्यादि मन्त्रके कालाग्निरुद्र ऋषि, अनुष्टुप्छन्द, रुद्र देवता रुद्रकी उपासनामें इसका प्रयोग होता है । जो कि, एकाक्षरमय अनन्त ज्ञानमय परब्रह्म जो कि, भक्तोंके लिये उमामहेश्वरके स्वरूप, जो अर्द्धाशमें कृष्णवर्ण और अर्द्धाशमें पिंगलवर्ण, योगबलसे ऊर्ध्वरेता, त्रिनयन, ऐसे विश्वरूपको हम पुनः पुनः प्रणाम करते हैं ३२ ॥

(अ०) ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, और वरुण देवको जल देकर नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे । जगत्
सवित्रे शुचये, सवित्रे कर्मदायिने ॥ ३४ ॥

इदमर्घ्यं ॐ श्रीसूर्याय नमः ॥ ३५ ॥

ॐ जवाकुसुम-सङ्काशं काश्यपेयं महद्युतिम् ।

ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥ ३६ ॥

इस मन्त्रसे सूर्य भगवानको प्रणाम करें ।

ॐ यदक्षरं परिभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यदभवेत्

पूर्णं भवतु तत् सर्वं तत्प्रसादात् सुरेश्वरी ॥ ३७ ॥

इस मन्त्रसे गायत्री देवीको एक चुल्लू जल देकर क्षमाप्रार्थना करें ।

इसी तरहसे मध्याह्न और सायं सन्ध्या भी करना चाहिये । मध्याह्न और सायं सन्ध्यामें आचमन और गायत्रीका ध्यान पृथक् है, जो कि पहिले ही लिख चुके हैं और और सब प्रातः सन्ध्याके अनुसार ही करना होगा ।

इति सामवेदीय सन्ध्याग्रयोगः समाप्तः ।

हे परब्रह्मके स्वरूप सूर्यदेव आप तेजस्वी, दीप्तिमान् विश्वव्यापि तेजके आधार, जगतके कर्ता, पवित्र और कर्मके प्रवर्तक हैं, आपको प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥

यह—अर्घ्य सूर्यको अर्पण किया ॥ ३५ ॥

जवापुष्पकी तरह रक्तवर्ण, काश्यपके पुत्र, अतिशय दीप्तिमान् अंधकारको नाश करनेवाले, सर्वपापनाशक सूर्यदेवको प्रणाम करते हैं ॥ ३६ ॥

इस सन्ध्याकार्यमें यदि किसी अक्षर या मात्राका उच्चारण न हुआ हो, तो हे देवि ! सुरेश्वरी ! गायत्री ! आपकी कृपासे वह सन्पूर्ण हो जाय ३७

यजुर्वेदीय सन्ध्या प्रयोगः ।

यजुर्वेदीय सन्ध्यापद्धतिमें भी दो भेद हैं। उनमें हलायुधकृत पद्धतिके अनुसार ही अधिकांश ब्राह्मण सन्ध्या करते हैं, इसलिये उसी मतके अनुसार ही यह सन्ध्या लिखी गई है।

सामवेदीय सन्ध्यापद्धतिके अनुसार ॐ शन्नऽआपो—मन्त्रसे ऋष्यादि स्मरण, प्राणायाम, आचमन और अघमर्पण मन्त्रजप करके प्रातः और सायं सन्ध्यामें तीन बार और मध्याह्न सन्ध्यामें एक बार गायत्री पढ़कर जलाञ्जलि देना होगा।

(सूर्योपस्थान)

एक पैरसे खड़े होकर प्रातः सन्ध्या और सायं सन्ध्यामें कृताञ्जलि और मध्याह्न सन्ध्यामें ऊर्ध्वाहु होकर—

प्रस्कएव ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः सूर्योदेवता अग्निष्टोमे सूर्यो-
पस्थाने विनियोगः । ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति
केतवः, दृशे विश्वाय सूर्य्य ॥ १ ॥

चित्रमित्यस्य कुतस ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्योदेवताऽग्नि-
ष्टोमे सूर्य्योपस्थाने विनियोगः । ॐ चित्रं देवानामुदगाद-
नीकं चक्षुर्मित्रस्य, वरुणस्याग्नेः आप्रा द्यावा पृथिवीञ्चा-
न्तरीक्षं सूर्य्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ २ ॥

१।२ मन्त्रकी व्याख्या सामवेदकी सन्ध्यामें लिखी गई पृ० ३२ देखें।

तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः सूर्योदेवता पुर
 उष्णिक् छन्दो महावीराद्यन्तयोः शान्तिकरणे विनियोगः ।
 ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं,
 जीवेम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रव्रवाम शरदः
 शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात् ॥३॥

उद्वयमित्यस्य प्रस्कएव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्योदेवता
 सौत्रामण्यवभृते सूर्योपस्थाने विनियोगः । ओं उद्वयं तमस-

तच्चक्षुरिति । तत् चक्षुः (जगत्के नेत्रस्वरूप) देवहितं (देवताओंके
 प्रिय) शुक्रं (पवित्र मूर्ति) पुरस्तात् (पूर्वदिशामें) उच्चरत् (उदित
 हुए हैं) शतं शरदः (शत वर्ष) वयं पश्येम (हम लोगोंकी दर्शनशक्ति
 रहे) शतं शरदः जीवेम (शत वर्षपर्यन्त स्वाधीन हो जीवित रहें)
 शतं शरदः शृणुयाम (शतवर्ष पर्यन्त श्रवणशक्ति रहे) शतं शरदः प्रव-
 वाम (शतवर्ष पर्यन्त बोलनेकी शक्ति रहे) शतं शरदः मदीनाः स्याम
 (शतवर्ष पर्यन्त किसीके सामने दीन न होवें) भूयश्च (फिर भी)
 शतात् शरदः (शतवर्षके बाद भी पूर्वोक्त शक्ति रहे) ॥ ३ ॥

उद्वयमिति । वयं (हम लोग) तमसस्परि (अप्रकाशस्वरूप

(अनुवाद) तच्चक्षुरित्यादि मन्त्रके दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि सूर्यदेवता-
 पुरउष्णिक् छन्द महावीर यागके आदि और अन्तमें शान्ति कार्यमें इसका
 प्रयोग होता है । देवगणके प्रिय पवित्र मूर्ति, जगत्के नेत्रस्वरूप सूर्य
 भगवान् पूर्व दिशामें उदित हुए हैं । (उनकी कृपासे) हम लोग
 शतवर्ष पर्यन्त अच्छी तरह देख सकें, स्वाधीन हो जीवित रह सकें,
 अच्छीतरहसे सुन सकें, अच्छी तरह बोल सकें, किसीके सामने दीन न
 हो जायं, शतवर्षके बाद भी बहु काल तक इसी प्रकार ही रहें ॥ ३ ॥

स्परि, स्वः पश्यन्त उत्तरं । देवं देवता सूर्यमगन्म ज्योति-
रुत्तमं ॥ ४ ॥

सूर्यऋषि सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः । ओं
स्वयम्भूरसि, श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि, वर्चोमे देहि, सूर्य-
स्यावृत मन्वावर्त्ते ॥ ५ ॥

भूलोकके उर्द्ध्व भागमें अवस्थित) स्वः (स्वर्गलोकको) पश्यन्त (देखकर)
उत्तरम् (उत्कृष्टतम) देवता (देवताओंके मध्यमें) देवम् (दीप्ति-
मान्) ज्योति (ज्योतिस्वरूप) उत्तमम् (उत्तम) सूर्यं (सूर्यको)
अगन्म (उपासना करते हैं) ॥ ४ ॥

स्वयम्भूरिति । हे सूर्य ! तुम स्वयम्भूः (स्वतः प्रकाशमान)
असि (हो) श्रेष्ठः (श्रेष्ठ) रश्मि (किरणें) वर्चोदा (तेजके दाता)
असि (हो) वर्चः (ब्रह्मतेज) मे (मुझको) देहि (दान करें) सूर्यस्य
(सूर्यके) आवृतं (आवरण अर्थात् सूर्य जैसे पृथिवीको आवर्त्तन करते
हैं) अनु (तदनुसार) अहमपि (हम भी) आवर्त्ते (प्रदक्षिण
करनेका फललाभ करें) ॥ ५ ॥

उद्वयमिति मन्त्रके प्रस्कृष्ट ऋषि अनुष्टुप्छन्द, सौत्रामणीयागान्ते
सूर्यकी उपासनामें प्रयोग होता है । अप्रकाशस्वरूप भूलोकके उर्द्ध्वस्थित
स्वर्गलोकको देखकर हम लोग ज्योतिस्वरूप और अग्न्यादि ज्योतिर्मय
पदार्थोंसे उत्कृष्टतम सूर्यदेवकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

(अ०) सूर्य ऋषि, सूर्य देवता, सूर्यकी उपासनामें इसका प्रयोग
होता है । सूर्य ! तुम जैसे स्वयं प्रकाशमान हो । तुम किसीसे प्रका-
शित नहीं होते हो, तुम श्रेष्ठ रश्मि और तेजके दाता हो, इसलिये मुझको
ब्राह्मणतेज प्रदान करो । सूर्य जिस प्रकार पृथिवीकी प्रदक्षिणा करते
हैं हम भी ऐसे भूप्रदक्षिण करनेका फललाभ करें ॥ ५ ॥

हिरण्यस्तूपाङ्गिरा ऋषिः सविता देवता, लिष्टुप् छन्दः
सूर्योपस्थाने विनियोगः । ओं आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना, देवो
याति भूवनानि पश्यन् ॥ ६ ॥

कृताञ्जलि होकर—

ओं तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि, प्रियं
देवानामनामृष्टं देवयजनमसि ॥ ७ ॥

नीचे लिखे मन्त्रोंसे तीनवार अंगन्यास करना चाहिये ।

ओं (हृदि) भूः (शिर) भुवः (शिखायां) वः
(सर्वगात्रेषु) स्वः करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ॥

आकृष्णेनेति । सविता (सूर्य) देवः (दीप्तिमान्) कृष्णेन रजसा
(शून्य मार्गमें) आवर्त्तमानः (घूमते फिरते) हुण् अमृतं (देव
लोगोंको) मर्त्य (नर लोगोंको) निवेशयन् (स्थापन करके) भुवनानि
(समस्त लोकोंको) पश्यन् (प्रकाशित करके) हिरण्ययेन (सोनेके)
रथेन (रथसे) आयाति (आरहे हैं) ॥ ६ ॥

तेजोऽसीति । हे गायत्रि त्वं तेजोऽसि (ब्रह्मतेजके स्वरूप हो)

(अ०) हिरण्यस्तूप अङ्गिरा ऋषि, सूर्य देवता, त्रिष्टुप् छन्द, सूर्यकी
उपासनामें इसका प्रयोग होता है । सूर्यदेव शून्यमार्गमें घूमते फिरते
हुण् देवगणको, मनुष्यगणको स्थापन करके और समस्त लोकोंको प्रकाशित
करके सोनेके रथसे आरहे हैं ॥ ६ ॥

हे गायत्रि ! आप ब्रह्मतेजके स्वरूप दीप्तिमती, मुक्तिप्रदा, चिन्त-
नीया, सकल लोगोंके प्रणम्या, देवताओंके प्रिय और ईश्वरोपासनाके
मन्त्रस्वरूपा हैं ॥ ७ ॥

(गायत्री-ध्यान)

प्रातर्ध्यान—प्रातर्गायत्री रविमण्डलमध्यस्था रक्त-
वर्णा द्विभुजा अक्षसूत्रकमण्डलुधरा हंसासनमारूढ़ा ब्रह्माणी
ब्रह्मदैवत्या कुमारी ऋग्वेदोदाहता ध्येया ॥ ८ ॥

मध्याह्नध्यान—मध्याह्ने सावित्री रविमण्डलमध्यस्था
कृष्णवर्णा चतुर्भुजा त्रिनेत्रा शङ्खचक्रगदापद्महस्ता,
युवती गरुडारूढ़ा वैष्णवी विष्णुदैवत्या यजुर्वेदोदाहता-
ध्येया ॥ ९ ॥

सायाह्नध्यान—सायाह्ने सरस्वती रविमण्डलमध्यस्था
शुक्लवर्णा द्विभुजा त्रिशूलडमरूकरा वृषारूढ़ा वृद्धा रूद्राणी
रूद्रदैवत्या सामवेदोदाहता ध्येया ॥ १० ॥

शुक्रमसि (दीप्तिमती हो) अमृतमसि (अमृतप्रदा हो) धाम (चिन्त-
नीया) नामासि (प्रणम्या हो) देवानाम् (देवताओंके) प्रियं (प्रिय)
अनाष्टं (अनभिभूतं) देवयजनं (वैदिकमन्त्र जात) ॥ ६ ॥

प्रातःकालमें गायत्रीको कुमारी सूर्यमण्डलमें रहनेवाली रक्तवर्णा,
द्विभुजा, एक हाथमें रूद्राक्षमाला और दूसरे हाथमें कमण्डलुधारण करने
वाली हंसके ऊपर स्थिता ब्रह्मशक्तिमयी रूपसे ध्यान करें ॥ ८ ॥

मध्याह्न सन्ध्यामें—सावित्री सूर्यमण्डलमें रहनेवाली कृष्णवर्णा चतु-
र्भुजा, त्रिनेत्रा, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मधारण करनेवाली युवती गरुड़के
ऊपर रहनेवाली वैष्णवी यजुर्वेदसे युक्ता इस प्रकार ध्यान करें ॥ ९ ॥

सायं सन्ध्यामें—सरस्वती, सूर्यमण्डलमें रहनेवाली शुक्लवर्णा द्विभुजा
त्रिशूल और डमरू धारण करनेवाली बैलकी सवारी करनेवाली वृद्धा,
रूद्रशक्तिमयी सामवेदसे युक्ता इस प्रकार चिन्तन करें ॥ १० ॥

(जप)

गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सवितादेवता गायत्रीच्छन्दः
गायत्र्युपस्थाने विनियोगः ।

ओं भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ओं ॥११॥

इस गायत्रीको यथाशक्ति जप करें, जपका क्रम और मन्त्रका अर्थ पहले ही लिख चुके हैं ॥

(विसर्जन)

ओं उत्तरे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतवासिनी ॥ ब्राह्मणैः
समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया ॥ १२ ॥

इस मन्त्रमे एक अञ्जलि जल देना होगा ।

इसके बाद नीचे लिखे हुए मन्त्रोंसे थोड़ा थोड़ा जल देना चाहिये—

ओं नमो दिग्भ्यः । ओं नमो दिग्देवताभ्यः । ओं
नमो ब्रह्मणे । ओं नमो पृथिव्यै । ओं नमः औषधीभ्यः ।
ओं नमो अग्नये । ओं नमो वाचे । ओं नमो वाचस्पतये ।
ओं नमो विष्णवे । ओं नमो महते । ओं नमो अद्भ्यः ।
ओं नमोऽपांपतये । ओं नमो वरुणाय ॥ १२ ॥

ॐ पृ० ३५ सामवेदीय सन्ध्या देखें ।

पर्वतवासिनी देवी आप पर्वतके ऊंचे शिखरपर वास करती हैं,
ब्राह्मणोंकी अनुज्ञा पाकर आप अपने स्थानको गमन कीजिये ॥ ११ ॥

दिक्समूह, दिक्पतिसमूह, ब्रह्मा, पृथिवी, औषधी, अग्नि, वाक्य,
वाक्यपति, विष्णु, महत्पुरुष, जल और जलपतिको नमस्कार करते हैं ॥ १२ ॥

सूर्यार्घ्य

ओं नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे । जगत्
सवित्ते शुचये सवित्ते कर्मदायिने ॥१३॥

एषोऽर्घ्यः ओं श्रीसूर्याय नमः ।

पूर्व नियमके अनुसार अर्घ्य या जल देना होगा ।

(सूर्यप्रणाम)

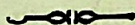
ओं जवाकुसुम सङ्काशं काश्यपेयं महाद्वयुतिं, ध्वान्तारिं
सर्वपापघ्नं प्रणतोस्मि दिवाकरं ॥१४॥

इस तरहसे प्रातः सन्ध्या करके ब्रह्मयज्ञ, शिवपूजादि करना होगा ।
तदनन्तर यथासमय मध्याह्न और सायं सन्ध्यादि करना चाहिये ।

हे परब्रह्मस्वरूप सूर्यदेव ! आप तेजस्वी, दीप्तिमान्, विश्वव्यापि
तेजके आधार, जगत्के कर्त्ता, पवित्र और कर्मके प्रवर्त्तक हैं, आपको प्रणाम
करते हैं ॥१३॥

जवापुष्पकी तरह रक्तवर्ण, कश्यपके पुत्र, दीप्तिमान्, अन्धकारको
नाश करनेवाले, सर्वपापके विनाशक आपको प्रणाम करते हैं ॥१४॥

ऋग्वेदीय सन्ध्याप्रयागः ।



सामवेदीय सन्ध्यापद्धतिके अनुसार—ॐ शन्न “मन्त्रसे मथोस्वः-पर्यन्त” मन्त्रपाठ करके माज्जन करें । इसके बाद—

(प्राणायाम)

ओंकारस्य ब्रह्मऋषिरग्निर्देवता गायत्री छन्दः
सर्वकर्मरम्भे विनियोगः ॥१॥ सप्तव्याहतीनां विश्वामित्रभृगु-
भरद्वाजवशिष्ठ-गौतम-काश्यपाङ्गिरस ऋषयः, अग्निवाय्वा-
दित्य-बृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वदेवादेवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्
बृहती पङ्क्ति-त्रिष्टुप् जगत्यश्छन्दांसि, प्राणायामे विनि-
योगः ॥२॥ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता, गायत्री
छन्दः प्राणायामे विनियोगः ॥ ३ ॥

ॐ कारके ब्रह्मऋषि अग्नि देवता गायत्री छन्द और समस्त कर्मोंके प्रारम्भमें इसका प्रयोग होता है ॥ १ ॥

भूरादि सप्तव्याहतिके यथाक्रमसे—विश्वामित्र, भृगु, भरद्वाज, वशिष्ठ, गौतम, काश्यप, और अंगिरा ऋषि अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र, विश्वदेव, देवता, गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पङ्क्ति, त्रिष्टुप् जगति छन्द, और प्राणायाममें इसका प्रयोग होता है ॥ २ ॥

गायत्रीके विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता गायत्री छन्द और प्राणा-याममें इसका प्रयोग होता है ॥ ३ ॥

गायत्री शिरसः प्रजापति ऋषि, ब्रह्मवाय्वग्नि-सूर्या
श्चतस्रो देवताः, प्राणायामे विनियोगः ॥ ४ ॥

(विनियोग कहकर जल देनेकी रीति है) इन मन्त्रोंसे ऋग्यादि
स्मरण करके प्राणायाम करना चाहिये ।

(प्राणायाम)

अपनी चारों ओर जल घुमाकर दक्षिण हस्तके अंगुठे द्वारा दक्षिण
नासिका बंदकर वाम नासासे श्वास लेते हुए—

ॐ हंसस्थं द्विभुजं रक्तं साक्षसूत्रकमण्डलुं, चतुर्मुख-
महं वन्दे ब्रह्माणं नाभिमण्डले ॥ ५ ॥

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं
तपः ओं सत्यं । ओं तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् । ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं
ब्रह्मभू भुवः स्वरो ॥ ६ ॥

इसके बाद अनामिका और कनिष्ठासे वाम नासाको बन्द कर कुम्भक
करते हुए—ओं शंखचक्रगदापद्मकरं गरुडवाहनम् । हृदिनीलो-
त्पलश्यामं विष्णुं वन्दे चतुर्भुजम् ॥ ७ ॥

गायत्री शिर मन्त्रके प्रजापति ऋषि, ब्रह्म, वायु, अग्नि सूर्य देवता-
प्राणायाममें इसका प्रयोग होता है ॥ ४ ॥

हंसके ऊपर स्थित, द्विभुज, रक्तवर्ण, जपमाला और कमण्डलु धारण
करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माको नाभि देशमें ध्यान करके प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥

अर्थ सामवेदीय सन्ध्यामें पहले ही दिया गया पृ० २५ देखें ॥ ६ ॥

शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मको धारण करनेवाले, गरुडके ऊपर स्थित,
नील कमलकी तरह श्यामवर्ण, चतुर्भुज विष्णुको हृदयमें ध्यान करते हुए
प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं
तपः ओं सत्यं ॥ ओं तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीम-
हि धियो योनः प्रचोदयात् ॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं
ब्रह्मभूर्भुवः स्वरो ॥ ८ ॥

इसके बाद दाहिने भगूँठेको धीरे धीरे छोड़कर श्वास त्यागरूप रेचक
करते हुए—

ओं श्वेतं त्रिशूलडमरुकरमर्द्धेन्दुभूषितं । त्रिलोचनं
व्याघ्रचर्मपरीधानं वृषासनं । ललाटे चिन्तयेद्देवमेवं भुजगभू-
षणम् ॥ ९ ॥

ॐ भूःसे स्वरोपर्यन्त पाठ करे ॥ १० ॥

(आचमन)

ओं सूर्यश्चेत्यनुवाकस्य याज्ञिक उपनिषदृषिः सूर्य

अर्थ पहले ही दिया गया पृ० २५ देखें ॥ ८ ॥

श्वेतवर्ण, त्रिशूल और डमरु धारण करनेवाले, अर्द्धचन्द्रसे युक्त, त्रिलो-
चन, व्याघ्रचर्म पहिने हुए, वृषके ऊपर स्थित सर्पसे भूषित महादेवको
ललाटमें चिंतन करना चाहिये ॥ ९ ॥

सूर्यश्च इस मन्त्रके याज्ञिक उपनिषद ऋषि, सूर्य, मनु, मनुपति,
और रात्रि देवता, सूर्यश्च मन्त्रसे रक्षन्ताम् पर्यन्त मन्त्रके षतुर्विंशत्यक्षरा
गायत्री छंद, यद्वात्रियासे मयि पर्यन्त मन्त्रके पञ्चपदा पङ्क्ति छन्दः
इदमहम्से लेकर स्वाहा पर्यन्त मन्त्रके दशाक्षर चरणद्वय विशिष्ट विराट
छन्दः, आचमनमें इसका प्रयोग होता है । मन्त्रकी व्याख्या पहले ही
सामवेदीय सन्ध्यामें हो चुकी है ॥ ११ ॥

मन्यु-मन्युपति राजयो देवताः सूर्यश्चेत्यारभ्य रक्षन्तामित्य-
न्तस्य चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री यद्रान्येत्यारभ्य मयीत्यन्तस्य
पञ्चपदापंक्तिः इदमहमित्यारभ्य स्वाहेत्यन्तस्य दशाक्षरपादा-
भ्यामुपेता विराट् छन्दः मन्त्राचमने विनियोगः ॥ ११ ॥ ओं
सूर्यश्चक्षुः मन्युश्च इत्यादि स्वाहापर्यन्त (सामवेदीय सन्ध्यामें
२७ पृ० देखो) ।

मध्याह्न सन्ध्यामें निम्नलिखित मन्त्र पाठ करके आचमन करें ।

आपः पुनन्त्वित्यनुवाकस्य नारायण ऋषि रापो
देवताः अष्टिरश्चन्दो, मन्त्राचमने विनियोगः । ओं आपः
पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु मां । पुनन्तु ब्रह्मणस्पति-
र्ब्रह्मपूता पुनातु मां ॥ यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वा दुरचरितं
सम । सर्वं पुनन्तु मामपोऽसताञ्च प्रतिग्रहं स्वाहा ॥ १२ ॥

(सायं आचमन)

अग्निश्चेत्यनुवाकस्य याज्ञिक उपनिषद् ऋषिरग्निमन्युमन्यु-
पत्यहानि देवताः अग्निश्चेत्यारभ्य रक्षन्तामित्यर्चस्यचतु-
र्विंशत्यक्षरा गायत्री, यदहोत्यारभ्य मयीत्यन्तस्य पञ्चपदा

आपः पुनन्तु इस मन्त्रके नारायण ऋषि, जल देवता, अष्टि
छन्दः, मन्त्राचमनमें इसका प्रयोग होता है । ॥ १२ ॥ मन्त्रकी व्याख्या
(२८ पृष्ठमें देखो)

अग्निश्च इस मन्त्रके याज्ञिक उपनिषद् ऋषि, अग्नि, म यु,
मन्युपति और दिन देवता; अग्निश्च मन्त्रसे रक्षन्तां पर्यन्त मन्त्रके चतुर्वि-
ंशत्यक्षरा गायत्री छन्द, यदहो मन्त्रसे मयि पर्यन्त मन्त्रके पञ्चपदा

पंक्तिः इदमहमित्यारभ्य स्वाहेत्यन्तस्य दशाक्षर पादाभ्या-
मुपेता विराट्छन्दो मन्त्राचमने विनियोगः । ओं अग्निश्च
मा मन्युश्च मन्युपतयश्च । मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां । यद्-
द्वा पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पदभ्यामुदरेण
शिरसा अहस्तदवलुम्पतु यत् किञ्च दुरितं मयि । इदमहं
मा-ममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥१३॥

गायत्री पढ़कर मस्तकमें जल छिड़कना चाहिये ।

(पुनर्मार्जन)

ओं आपो हिष्ठेति नवर्चस्य सूक्तस्याम्बरीषः सिन्धु-
द्वीप ऋषिः, आपो देवताः, पञ्चम्या वर्द्धमाना, सप्तम्याः
प्रतिष्ठा, अन्त्ययोरनुष्टुप् शिष्टानां गायत्रीछन्दः, मार्जने
विनियोगः । ओं आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जं दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥१४॥ योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह
नः । उशतीरिव मातरः ॥१५॥ तस्मा अरं गमाम वो, यस्य
क्षयाय जिन्वथ । आपोजन यथाचन ॥१६॥

पङ्क्तिछन्दः, इदमहम् मन्त्रसे स्वाहा पर्यन्त मन्त्रके दशाक्षर चरणद्वय-
विशिष्ट विराट् छन्द, मन्त्राचमनमें इसका प्रयोग होता है । मन्त्रकी
व्याख्या (२९ पृष्ठ देखो) ॥१३॥

आपो हिष्ठा इत्यादि नौ मन्त्रके अम्बरीष पुत्र सिन्धुद्वीप ऋषि, जल
देवता, पञ्चम मन्त्रके वर्द्धमाना छन्दः सप्तम मन्त्रके प्रतिष्ठा छन्दः अन्तिम
दोनों मन्त्रके अनुष्टुप् छन्दः और बाकी पांचो मन्त्रके गायत्री छन्दः मार्जन-
में इसका प्रयोग होता है । १४।१५।१६ मन्त्रका अर्थ (३० पृ० देखो)

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं यो-
रभि स्रवन्तु नः ॥१७॥ ओं ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्प-
णीनां । अपो याचामि भेषजं ॥१८॥ ओं अप्सु मेसोमोऽब्रवी-
दन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निश्च विश्वशम्भुवं ॥१९॥ ओं आपः

शन्नइति । देवीः (देवी) आपः (जल) नः (हमलोगोंके)
शं (सुखकर) भवन्तु (हो) अभिष्टये (हमारे यज्ञके लिये हो)
पीतये (पानके लिये हो) शं (उत्पन्न रोगोंके शान्तिकारक) योः
(अनुत्पन्न रोगोंके पृथक्कारक) नः (हम लोगोंके ऊपर) स्रवन्तु
(क्षरित हो) ॥१७॥

ईशाना इति । वार्याणां (जलसे जात गेंहु आदिके) ईशानाः
(प्रभू) चर्पणीनां (मनुष्योंके) क्षयन्तीः (जीवन रक्षक) अपः
(जल) भेषजं (पाप नाशक सुख) याचामि (प्रार्थना करें) ॥१८॥

अप्सु इति । अप्सु (जलके) अन्तः (बीचमें) विश्वा भेषजा (समस्त
औषधियां हैं) मे (मुझको) सोमः (सोमदेव) अब्रवीत् (बोले हैं)
विश्वशम्भुवं (सारे जगत्के सुखकर) अग्नि च (अग्नि है) ॥१९॥

देवताके स्वरूप जल हम लोगोंके लिये सुखकर हो । हमारे यज्ञके
अङ्गस्वरूप हो । हमारे पीनेके लिये हो । हम लोगोंके पैदा हुए रोगकी
शान्ति और पैदा होनेवाले रोगको दूर कीजिये । और हम लोगोंकी
पवित्रताकी रक्षाके लिये हम लोगोंके ऊपर क्षरित हो (गिरें) ॥१७॥

जो जल गेंहु आदि शस्यके प्रभु मनुष्योंके जीवन रक्षक, उस जलसे
हम पापनाशक सुखकी प्रार्थना करते हैं ॥१८॥

सोमदेवने मुझसे कहा है कि, जलके मध्यमें समस्त औषधियां हैं ।
और समस्त जगत्के सुखकर अग्नि हैं ॥१९॥

पृणीत भेषजम्, वरूथं तन्वे मम । ज्योक् च सूर्य्यं दृशे ॥२०॥
 ओं इदमापः प्रवहत, यत् किञ्च दुरितं मयि । यद्वाहमभि
 दुद्रोह, यद्वा शेष उतानृतं ॥२१॥ ओं आपो अद्यान्वचारिषं, रसेन

आपः इति । हे आपः (हे जल) मम तन्वे (मेरे शरीरके लिये)
 वरूथं (रोगनिवारक) भेषजं (औषधियां) पृणीत (पूरण करें) ज्योक्
 (चिरकाल) सूर्य्यं दृशे (सूर्य्यको देख सकें) ॥२०॥

इदमापः इति । मयि (मुझमें) यत् किञ्च दुरितम् (जो कुछ
 पाप) वा (अथवा) अहं (हमने) अभिदुद्रोह (जो कुछ द्रोह, दुसरों-
 का बुरा किया) वा (किन्वा) शपे (साधुओंको शाप दिया) उत
 (और भी) अनृतम् (जो कुछ असत्य बोला) तत् इदं (वेसब)
 प्रवहत (दूर ले जाओ) ॥२१॥

आप इति । अद्य (आज) अप अन्वचारिषं (जलमें प्रवेश किया)
 रसेन (रससे) समगस्महि (मिलित हुए हैं) हे अग्ने ? पयस्वान्

हे जल ? तुम मेरे शरीरके लिये रोगकी हटानेवाली औषधियां
 उत्पन्न कीजिये जिससे हम निरोग होकर बहुत दिनों तक सूर्य्यको
 देख सकें ॥२०॥

हे जल ? मुझमें जो कुछ पाप है अथवा हमने जो कुछ ज्ञानसे
 दुसरोंका बुरा किया अथवा साधुओंको जो कुछ शाप दिया, और
 झूठ बोले उन सब पापोंको हमसे दूर ले जाओ । अर्थात् मुझे निष्पाप
 (पवित्र) करो ॥२१॥

आज हमने जलमें घुसकर स्नान किया और उसके रससे मिल

समगस्सहि । पयस्वानग्न आगहि, तं मा सं सृज वर्चसा ॥२२॥

(अघमर्षण)

दाहिने हाथमें एक चुल्लू जल ले नाकके आगे लगाकर कृष्णवर्ण पाप पुरुष जो कि, हमारे शरीरमें है वह निकलकर इस जलमें—पतित हुए हैं इस प्रकार विचारते हुये:—

ऋतञ्चेति ऋकत्रयस्य माधुच्छन्दसाघमर्षण ऋषिः,
भाववृत्तो देवता अनुष्टुप् छन्दो अश्वमेधावभृथे
विनियोगः ॥२३॥

ॐ ऋतश्च सत्यञ्चा—इत्यादि मन्त्रसे मथोस्व पर्यन्त पाठ करके बायें तरफ पृथ्वीमें उस जलको फेंक देना चाहिये । २३ पृ०

(जलाञ्जलिदान)

ओं कारस्य ब्रह्मऋषिरग्निर्देवता गायत्रीच्छन्दः; महा-
व्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापति ऋषिः प्रजापति देवता बृहती

(जल युक्त) आगहि (इस काममें आजाओ) तत मा (उसी तरह मुझको) वर्चसा (तेजसे) संसृज (मिलित करो) ॥२२॥

गये । हे अग्निदेव ? जलके बीचमें रहनेसे तुम जल युक्त हो आजाओ मुझको तेजसे युक्त करो ॥२२॥

ऋतञ्चसे लेकर मथोस्वः पर्यन्त तीनों मन्त्रोंके माधुच्छन्दके पुत्र अघमर्षण ऋषि, भाववृत्तो देवता अनुष्टुप् छन्दो, अश्वमेधके अवभृथ स्नानमें इसका प्रयोग होता है ॥२३॥ मन्त्रकी व्याख्या (२३ पृष्ठ० देख)

ॐ कारके ब्रह्म ऋषि, अग्नि देवता गायत्री छन्दः, भूर्भुवःस्वः

छन्दः गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्रीछन्दः
सूर्यजलाञ्जलिदाने विनियोगः ॥२४॥

इसके बाद गायत्री पढ़कर प्रातः और सायं सन्ध्यामें तीनवार जला-
ञ्जलि देना उचित है ।

(मध्याह्न सन्ध्यामें)

आकृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः सविता देवता
त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यजलाञ्जलिदाने विनियोगः ॥२५॥ ओं आकृ-
ष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्य-
येन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन् ।*

इस मन्त्रसे सूर्यको एक अंजलि जल देना चाहिये ।

(सूर्योपस्थान)

दोनों चरणोंके अग्रभागसे यानी पंजोंके बलसे सूर्यदेवके सम्मुख
खड़े हो प्रातःकाल और सायंकालमें हाथ जोड़कर और मध्याह्नकालमें
ऊर्ध्वाहु हो मन्त्र पढ़े ।

प्रातःकालमें—चित्रं देवानामिति षड्रचस्य सूक्तस्य

इन तीनों महाव्याहृतिके परमेष्ठी प्रजापति ऋषि प्रजापति देवता बृहती
छन्द हैं सूर्यको जलाञ्जलि देनेमें इसका प्रयोग होता है ॥२४॥

आकृष्णेन मन्त्रके हिरण्यस्तूप ऋषि, सूर्यो देवता त्रिष्टुप् छन्द हैं,
सूर्यको जलाञ्जलि देनेमें इसका प्रयोग होता है ॥२५॥ मन्त्रकी व्याख्या
(४२ पृष्ठमें देखो)

चित्रं देवानाम् इत्यादि मन्त्रके कुतसऋषि, सूर्य देवता, त्रिष्टुप्छन्दः
सूर्यकी उपासनामें इसका प्रयोग होता है ॥२६॥

कुत्स ऋषि सूर्यो देवता त्रिष्टुपद्यन्दः सूर्योपस्थाने विनि-
योगः । ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण-
स्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं, सूर्य आत्मा जगत-
स्तस्थूषश्च ॥ २७ ॥ सूर्यो देवीमुपसं रोचमानां, मर्यो न योषाम-
भ्येति पश्चात् । यत्र नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति-
भद्रायभद्रं ॥ २८ ॥ ओं भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य, चित्रा एतग्नाः

मन्त्रकी व्याख्या (३२ पृष्ठमें देखो) ॥ २७ ॥

सूर्य इति । सूर्यः (सूर्य) देवी (दानादि गुणयुक्त)
रोचमानां (प्रकाशमाना) उपसं पश्चात् अभ्येति (ऊपा देवीके
पश्चात् अनुगमन करते हैं) मर्यो न योषां (मनुष्य जैसे युवती स्त्रीके
अनुगमन करते हैं) यत्र (जिस उपाकालमें) देवयन्तः (यागेच्छु)
नरः (यजमान लोग) युगानि (अग्निहोत्रादि कर्म) वितन्वते (विस्तार
करते हैं) भद्रं (कल्याणकर सूर्यके प्रति) भद्राय (कर्मफलके लिये) स्तव
करते हैं ॥ २८ ॥

भद्रा इति । भद्रा (कल्याणमय) अश्वा (व्यापक) एतद्गा
(घोड़े) हरिताः (हरणशील) चित्रः (विविध रंग) अनुमा-
द्यासः (यथाक्रमसे स्तवनीय) नमस्यन्तः (हम लोगोंके नमस्कार प्राप्त

मनुष्य जैसे युवती स्त्रीके पश्चात् दौड़ते हैं, ऐसे ही सूर्य-
देव प्रकाशमाना उपादेवीके पीछे घूम रहे हैं । जिस उपाकालमें यजमान
लोग सूर्यदेवकी पूजा करनेकी इच्छासे अग्निहोत्रादि कर्मका अनुष्ठान
करते हैं, हम कल्याणके लिये उन सूर्यदेवके प्रति स्तव करते हैं ॥ २८ ॥

सूर्यके किरणरूप अश्वसमूह मंगलमय सर्वव्यापक विचित्रवर्ण और
हम लोगोंके स्तवनीय हैं उनको हम लोगोंका नमस्कार प्राप्त हो, वे शून्य-

अनुमाद्यासः । नमस्यन्तो दिव आपृष्ठमस्थुः, परिद्यावा
पृथिवी यन्ति सद्यः ॥ २९ ॥ ॐ तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्म-
हिलं, मध्याकर्त्तोर्विततं सञ्जभार । यदेदयुक्त हरितः सधस्था-
दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३० ॥ ओं तन्मित्रस्य वरुण-

हो) दिवः (अन्तरीक्षके) पृष्ठ (पीठ) आस्थुः (आरोहण कर रहे हैं)
द्यावा (स्वर्ग) पृथिवी (मर्त्यलोकको) परियन्ति (व्याप्त कर
रहे हैं) ॥ २९ ॥

तदिति । सूर्यस्य (सूर्यके) तत् देवत्वं (वही ईश्वरत्व) महित्वं
(महत्त्व) तत् (वही) कर्त्तोः (कर्मके) मध्या (मध्ये) विनतं
(विस्तीर्ण किरणोंको) संजभार (हरण कर लेते हैं) यदा इत् (जिस
समयमें) हरितः (रसहरणशील अपने किरणोंको) सधस्थात् (इस
लोकसे लेकर) अयुक्त (दूसरे स्थानमें नियुक्त करते हैं) आत् (इसके
बाद ही) रात्री (रात्रि) वासः (तमः) सिमस्मै (समस्त लोकमें) तनुते
(विस्तार करते हैं) ॥ ३० ॥

तन्मित्रेति । तत् (उदयके समय) मित्रस्य वरुणस्य (मित्रवरु-

लोकमें आरोहण कर रहे हैं एवं उस समय स्वर्ग और मर्त्यलोकको व्याप्त
कर रहे हैं ॥ २९ ॥

सूर्यके वेही ईश्वरत्व और महत्त्व हैं—जो कि वे कर्मके
मध्यमें अर्थात् लोगोंके कर्म समाप्ति होते न होते अपनी किरणोंको
संहरण कर लेते हैं । जब वे अपनी किरणोंसे पृथ्वीलोकको दूसरे स्थान-
में नियुक्त करते हैं, तब रात्रि आकर समस्त लोकमें अन्धकाररूप आवरण-
का विस्तार करती है ॥ ३० ॥

सूर्यदेव उदयके समय मित्रवरुण आदि समस्त लोकोंके

स्याभिचक्षे, सूर्योरूपं कृणुते द्यौरुपस्थे । अनन्तमन्य-
द्रुशदस्य पाजः, कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ ३१ ॥ ॐ
आद्या देवा उदिता सूर्यस्य, निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी
उत द्यौः ॥ ३२ ॥

णादि समस्त जगत्के) अभिचक्षे (प्रकाशके लिये) द्योः (आकाश-
के) उपस्थे (मध्यमें) सूर्यः (सूर्य) रूपं (तेज) कृणुते (विस्तार
करते हैं) अस्य (सूर्यके) हरितः (रसहरणशील किरणें) अनन्तं
(अन्तहीन) रुशत् (दीप्यमान) पाजः (बलयुक्त) अन्यत् (तेजः)
कृष्णां (कृष्ण) सम्भरन्ति (धारण करता है) ॥ ३१ ॥

आद्येति । हे देवाः [प्रकाशमाना सूर्यकी किरणें] अद्य [इस समय]
सूर्यस्य (सूर्यके) उदिता (उदित होनेसे) अहंसः (पापसे)
निष्पिपृता (आकर्षण करके पालन करो) तत् (वह) नः (हम
लोगोंके) मित्रः (मित्रदेव) वरुणः (वरुणदेव) अदितिः (देव-
माता अदिति) सिन्धुः (जल) पृथिवी (पृथिवी) उत (और) द्यौः
(स्वर्गकी देवतायें) मामहन्तां (अनुमोदन करें) ॥ ३२ ॥

प्रकाशके लिये आकाशमें तेज विस्तार करते हैं । इन्हींके अश्व अर्थात्
(किरणें) दिनमें एक प्रकारका तेज धारण करती हैं, वह अनन्त, शुद्ध
वर्ण और अन्धकारको नाश करनेवाली और रात्रिमें एक प्रकारका तेज
धारण करती है, वह कृष्णवर्ण है ॥ ३१ ॥

हे प्रकाशमान किरणें ? तुम लोग आज सूर्यके उदयसे हम
लोगोंको निन्दनीय पापसे हटाकर पालन करो । मित्रदेव, वरुणदेव,
देवमाता अदिति, जल, पृथिवी, और स्वर्गके देवता हम लोगोंके उस
वाक्यको अनुमोदन करें ॥ ३२ ॥

मध्याह्न सन्ध्यामें एक पैरसे खड़े हो ऊपरकी ओर भुजायोंको उठाकर निम्नलिखित मन्त्रोंको पढ़े ।

उदुत्यमित्यस्य त्रयोदशर्चस्य सूक्तस्य काण्व प्रस्कण्व ऋषिः सूर्यो देवता, आद्यानां नवानां गायत्री, अन्त्यामां चतसृणां अनुष्टुप् छन्दः, सूर्योपस्थाने विनियोगः । ओं उदुत्यं जातवेदसं, देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ३३ ॥ ओं अपत्ये तायवो यथा, नक्षत्रायन्त्युक्तिभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ ३४ ॥ ओं अदृश्यस्य केतवो विरश्मयो जनां अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३५ ॥ ओं

अपेति । त्पे (वे) तायवः यथा (चोरकी तरह) नक्षत्र (नक्षत्र) अक्तुभिः (रात्रियोंके साथ) अपयन्ति (भागते हैं) विश्वचक्षसे (विश्वके प्रकाशक) सूराय (सूर्यके आगमनको देखकर) ॥ ३४ ॥

अदृशमिति । अस्य (सूर्यके) केतवः (बोधकारक) रश्मयः (किरणें) जनात् अनु अदृश्यं (समस्त जगत्को प्रकाश करती है) विभ्रान्तः (प्रकाशमान) अग्नय यथा (अग्नि जैसे) ॥ ३५ ॥

उदुत्यमित्यादि मन्त्रके कण्वपुत्र प्रस्कण्व ऋषि, सूर्यो देवता; प्रथम नौ मन्त्रोंके गायत्री छन्दः, शेष चारों मन्त्रोंके अनुष्टुप् छन्दः, सूर्यकी उपासनामें इसका प्रयोग होता है । व्याख्यादि ३२ पृष्ठमें देखो ॥ ३३ ॥

जगत्प्रकाशक सूर्यको आते हुए देखकर नक्षत्रगण चोरोंकी तरह रात्रिके साथ साथ भाग रहे हैं ॥ ३४ ॥

इस सूर्यके चिह्नस्वरूप किरणें प्रकाशमान अग्निकी तरह समस्त जगत्को प्रकाशित कर रही है ॥ ३५ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो, ज्योतिष्कृदसि सूर्य, विश्वमाभासि रोच-
नम् ॥ ३६ ॥ ओं प्रत्यङ् देवानां विशः, प्रत्यङ् देवि मानु-
षान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दशे ॥ ३७ ॥ ओं येना पावक चक्षसा,
भूरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३८ ॥ ओं विद्या-

तरणिरिति । हे सूर्य ! त्वं तरणिः (आरोग्यदाता) विश्वदर्शतः
(सकलके दर्शनीय) ज्योतिष्कृत् (प्रकाशकारक) विश्वं (समस्त) रोचनम्
(अन्तरीक्ष) आ (सब तरह) भासि (प्रकाश करते हैं) ॥ ३६ ॥

प्रत्यङ् इति । हे सूर्य ! त्वं देवानां विशः (देवताओंके अधीन जो
मरुत नामक देवतागण हैं) मानुषान् (और मनुष्योंके) प्रत्यङ् उदेपि
(सामने उदित हो रहे हो) ॥ ३७ ॥

येनेति । हे पावक (सबके शोधन करनेवाले) वरुण (अमङ्गलनाशक
सूर्य) त्वं जीवान् (तुम प्राणियोंको) भूरण्यन्तं (धारण करनेवाला
इस लोकको) येन चक्षसा (जिस प्रकाशसे) अनु पश्यसि (यथा-
क्रमसे प्रकाश करते हैं) ॥ ३८ ॥

हे सूर्य ! तुम उपासकोंके आरोग्यदाता, सबके दर्शनीय समस्त
पदार्थोंके प्रकाशक हो । तुम समस्त आकाशको चारों ओरसे प्रका-
शित करते हो ॥ ३६ ॥

हे सूर्य, आप देवताओंके अधीन रहनेवाले मरुत नामक देवगणोंके
और मनुष्योंके सामने उदित हो रहे हैं ॥ ३७ ॥

हे सबके शोधन करनेवाले अमङ्गलनाशक सूर्य ! तुम तेजसे समस्त
प्राणियोंके पोषणकारी इस मर्त्यलोकको यथाक्रमसे प्रकाशित करते
हो, उस तेजकी स्तुति करते हैं ॥ ३८ ॥

मेभि रजस्पृथ्वहा, मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य्य
॥३९॥ ओं सप्त त्वा हरितो रथे, वहन्ति देव सूर्य्य।शोचिष्केशं
विचक्षण ॥४०॥ ओं अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरौ रथस्य
नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥४१॥ ओं उद्वयं तमसस्परि

विद्यामिति । हे सूर्य्य ! त्वं पृथु (तुम विस्तीर्ण) रजः (लोक),
दयाम् (अन्तरीक्ष) व्येपि (याते है) । अहा (दिवा) अक्तुभिः-
(रात्रियोंके साथ) मिमानः (उत्पन्न करके) जन्मानि (भूतसमूहोंको)
पश्यन् (प्रकाशित करके) ॥ ३९ ॥

सप्तेति । हे देव ? (प्रकाशमान) विचक्षण (सबके प्रकाशक)
सूर्य्य, सप्त (सप्त) हरितः (किरणें) त्वा (तुमको) वहन्ति (वहन
करती है) शोचिष्केशं (तेजोमय) ॥ ४० ॥

अयुक्तेति । सूरः (सबको प्रेरण करनेवाले) शुन्ध्युवः (अश्वोंकी
स्त्रियां) सप्त (सप्तसंख्यक) अयुक्त (अपने रथमें युक्त किया) रथस्य
नप्त्यः (जिससे रथ पतित नहीं होता है) ताभिः (इसी तरह अश्व-
स्त्रियोंसे) स्वयुक्तिभिः (अपने रथमें युक्त) याति (जा रहे हैं) ॥४१॥

हे सूर्य्य ? तुम दिवारारात्रिको उत्पन्न कर, समस्त पदार्थोंको देख
विशाल आकाशमें घूमते हो ॥ ३९ ॥

हे विश्व प्रकाशक सूर्य्यदेव ? आपको तेजोमय रथके ऊपर चढ़ाकर
किरण स्वरूप सप्ताश्व ऊपर ले चलते हैं ॥ ४० ॥

जो रथको नहीं गिराती ऐसी सात घोड़ियोंको सूर्य्य देवने अपने
रथमें जोता है उन्हींसे जुते हुए अपने रथमें बैठ सूर्य्य देव जा रहे हैं ॥४१॥

उद्वयमिति । मन्त्रकी व्याख्या (४१ पृ० देखो) ॥ ४२ ॥

ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरं । देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमं
॥ ४२ ॥ ओं उद्यन्नद्य मित्रमह, आरोहन्नुत्तरां दिवं । हृद्रोगं
मम सूर्य, हरिमाणश्च नाशय ॥ ४३ ॥ ओं शुकेषु मे, हरि-
माणं, रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे. हरिमाण

उद्यन्निति । हे सूर्य (सबके प्रेरक) मित्रमहः (सबके अनुकूल तेजसे युक्त) अद्य (इस समय) उद्यन् (उदित हो) उत्तराम् (अन्यच्च) दिवम् (आकाश) आरोहन् (आरोहन करके) मम हृद्रोगं (मेरे मानसिक रोग) हरिमाणं (शारीरिक रोग) नाशय (विनाश करो) ॥ ४३ ॥

शुकेष्विति । मे (मेरे) हरिमाणं (हरिद्वर्ण) शुकेषु (शुक पक्षियोंमें) रोपणाकासु (रोपण नामक पक्षियोंमें) दध्मसि (स्थापन करते हैं) हारिद्रवेषु (हरिताल वृक्षमें) मे मेरा हरिमाणं (हरिद्वर्ण) निदध्मसि (स्थापन करते हैं) ॥ ४४ ॥

उदगादिति । अयं (यह) आदित्यः (सूर्य) विश्वेन सहसा (समस्त बलके) सह (साथ) उदगात (उदित हुए) मह्यं द्विपन्तं

हे सबके अनुकूल तेजसे युक्त सूर्य! तुम इस समय बहुत ऊंचे आकाशमें आरोहन कर उदित हों, मेरे मानसिक रोग और शारीरिक रोगोंको विनाश करो ॥ ४३ ॥

बीमारीके कारण यदि मेरा शरीर हरिद्वर्ण हो जाता है तब शुक पक्षी और रोपणाका पक्षियोंमें उस वर्णको स्थापन करते हैं । और उस हरिद्वर्ण भावको हरितालवृक्षमें स्थापन करते हैं ॥ ४४ ॥

यह सूर्य मेरे रोगोंको विनष्ट करनेके लिये पूर्ण बलसे उदित हुए हैं । हम अपने रोगको स्वयं नाश नहीं करेंगे । (सूर्यदेव ही करें) ॥ ४५ ॥

निदध्मसि ॥४४॥ ॐ उदगादयमादित्यो, विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मोऽहं द्विषते रधं ॥ ४५ ॥

सायं सन्ध्यामें—

मो. पु वरुणेति पञ्चर्चस्य वशिष्ठ ऋषिर्वरुणो देवता
गायत्रीछन्दः सूर्योपस्थाने विनियोगः । ॐ मो पु वरुण
मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमं । मृडा सुत्तत्र मृडय ॥ ४६ ॥
ॐ यदेमि प्रस्फुरन्निव, दति न ध्मातो अद्रिवः । मृडा सुत्तत्र

रन्धयन् (मेरे व्याधियोंको बिनष्ट करते हुए) अहं द्विषते (हम अपने
व्याधियोंकी) मो रधं (हिंसा नहीं करेंगे) ॥ ४५ ॥

मोष्विति । हे राजन् (ईश्वर) वरुण, (सूर्य) मृन्मयं (पार्थिव)
गृहं मो (जाना न हो) अहं गमं (आपके घरको प्राप्त करें) मृड
(मुझे सुख दो) हे सुक्षत्र (शोभनीय देवता) मृडय (मुझे दया करो) ॥ ४६ ॥

यदेमीति । हे अद्रिवः (शस्त्रयुक्त वरुण) यत् (जिस समय)
प्रस्फुरन्निव (सदीसे कांपता हुआ) दतिः न (भिस्तीकी तरह) ध्मातः
(वायुसे पूर्ण) एमि (आता हूँ) मृड (सुख दो) हे सुक्षत्र (शोभनीय
पुरुष) मृडय (दया करो) ॥ ४७ ॥

(अनु) मोपु वरुणादि पाचों मन्त्रोंके वशिष्ठऋषि, वरुण देवता,
गायत्री छन्द, सूर्यकी उपासनामें इसका प्रयोग होता है । हे ईश्वर
सूर्य, भूलोकमें मुझे जाना न हो, मुझे सुख दो, दया करो ॥ ४६ ॥

हे अस्त्रधारि सूर्य ? हम जिस समय जाड़ेसे कांपते हुए भिस्तीकी
तरह वायुसे पूर्ण होकर आपके पास जाउंगा अर्थात् आपकी उपासना
करूंगा, तब आप मुझे सुखी करो । और हे शोभनीय पुरुष मुझे
सुख दो और दया करो ॥ ४७ ॥

मृडय ॥४७॥ ॐ ऋत्वः समह दीनता, प्रतीपं जगमा शुचे ।
मृडा सुक्षत्र मृडय ॥४८॥ ॐ अपां मध्ये तस्थिवासं तृष्णा-
विदज्जरितारं । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥४९॥ ॐ यत् किञ्चेदं
वरुण, देव्यै जनेऽभि द्रोहं मनष्याश्चरामसि । अचित्ती यत्तव

ऋत्व इति । हे समह (धनशालिन्) शुचे (पवित्र वरुण) दीनता
(दीनताके हेतु) ऋत्वः (विहित कर्मके) प्रतीप (प्रतिकूल) जगमा
(प्राप्त किया) मृड (सुखी करो) हे सुक्षत्र (शोभनीय पुरुष)
मृडय (दया करो) ॥ ४७ ॥

अपामिति । अपां (समुद्रके जल) मध्ये (मध्यमें) तस्थिवासं
(अवस्थित होनेपर भी) जरितारं (आपके स्तव करनेवाले मुक्षको)
तृष्णा (प्यास) अविदं (प्राप्त हुआ) मृड (मुक्षको सुखी करो) हे
सुक्षत्र (शोभनीय पुरुष) मृडय (दया करो) ॥ ४८ ॥

यदिति । हे वरुण, देव्यै (देवसमूहके) यत् इदं किञ्च अभिद्रोहं
(जो कुछ अपकार किया) मनुष्या चरामसि (मनुष्य हो आचरण किया)
अचित्ती (अज्ञानसे) तव (त्वदीय) धर्म्मा (उपासना कार्यमें) युयोपिमं

हे धन शालिन सूर्य हम असामर्थ्य हेतु विहित कर्मोंका अनुष्ठान
नहीं कर सके हैं । हे शोभनीय पुरुष मुक्षको सुखी बनाओ, मेरे
प्रति दया करो ॥ ४७ ॥

समुद्रके मध्यमें स्थित होनेपर भी मुझे प्यास मालूम होता है, हे
शोभनीय पुरुष मुक्षको सुखी बनाओ (दया करो) ॥ ४८ ॥

हे सूर्य ? हम लोगोंने मनुष्य होकर देवताओंके प्रति जो कुछ
अपकार किया हो, और अज्ञानता वश तुम्हारी उपासनामें जो कुछ

धर्म्मा युयोपिम, मान स्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ४६ ॥

इसके बाद न्यास करना होगा—ॐ हृदयाय नमः (कहकर हृदय)
 ॐ भूः शिरसे स्वाहा (कहकर शिर) ॐ भूवः शिखायै वौषट् (कहकर
 शिखा) ॐ स्वः कवचाय हुं (कहकर सर्वांग) ॐ भू भुवः स्वः नेत्रत्रयाय
 वौषट् (कहकर नेत्र) ॐ भू भुवः स्व अस्त्राय फट् (कहकर दक्षिण
 करतलसे और उसके पृष्ठसे वाम करतल और वाम पृष्ठको स्पर्श करना
 चाहिये) ऐसा ही दो बार करना चाहिये ।

(गायत्री ध्यान)

प्रातः कालमें—बालां बालादित्यमण्डलस्थां रक्तवर्णां
 रक्ताम्बरानुलेपनसगाभरणां, चतुर्भुखीं दण्डकमण्डल्व
 त्सूत्राभयाङ्गचतुर्भुजां हंसारूढां ब्रह्मदैवत्यां ऋग्वेदमुदा
 हरन्तीं भूर्लोकधिष्ठात्रीं गायत्रीं नाम तां ध्यायेत् ॥५०॥

मध्याह्नः—युवतीं युवादित्यमण्डलस्थां श्वेतवर्णां श्वेता-

(विमोहित) हुए हैं । हे देव ? तस्मात् एनसः (इसलिये पापसे) नः
 (हम लोगोंको) मारीरिपः (हिंसा न करो) ॥४९॥

अपराध किया हो हे देव ! उस अपराधके लिये हम लोगोंकी हिंसा
 न करें ॥ ४९ ॥

प्रातः कालमें बालिकारूप नवीन सूर्यमण्डलमें ठहरनेवाली रक्तवर्णा
 रक्तवस्त्र, गन्ध और माला पहरनेवाली चतुर्भुखी, दण्ड, कमण्डलु रुद्राक्ष-
 माला और अभय चारों हाथोंमें लिये हुई हंसके ऊपर सवारी करनेवाली
 ऋग्वेदयुक्ता भुलोकके अधिष्ठात्री गायत्री नाम देवीका ध्यान करते हैं ॥५०॥

मध्याह्नकालमें युवती मध्याह्न कालीन सूर्यके मध्यमें ठहरनेवाली
 श्वेतवर्णा सुफेदवस्त्र, गन्ध, माला पहरनेवाली त्रिनयना पञ्चवक्त्रा सिरमें

म्बरानुलेपनस्रगाभरणां सत्त्रिनेत्रपञ्चवक्त्रां चन्द्रशेखरां
त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गडमरूकरां चतुर्भुजां वृषारूढां रुद्रदै-
वत्यां यजुर्वेदमुदाहरन्तीं भुवर्लोकाधिष्ठात्रीं सावित्रीं नाम तां
ध्यायेत् ॥ ५१ ॥

सायंकालमें—वृद्धां वृद्धादित्यमण्डलस्थां श्यामाम्बरानु-
लेपनस्रगाभरणां एकवक्त्रां शङ्खचक्रगदापद्माङ्कचतुर्भुजां
गरुडारूढां विष्णुदैवत्यां सामवेदमुदाहरन्तीं स्वर्लोकाधि-
ष्ठात्रीं सरस्वतीं नाम तां ध्यायेत् ॥ ५२ ॥

आवाहन—ॐ आयातु वरदादेवी अक्षरं ब्रह्मसम्मि-
तम् । गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व नः ॥ ५३ ॥

आयात्विति । वरदा (वरदेनेवाली) देवी (प्रकाशमाना)
अक्षरं (विनाशरहित) सम्मितम् (वेदादि शास्त्रोंसे प्रमाणित) ब्रह्म

चन्द्रको धारण करनेवाली त्रिशूल, खड्ग, खट्वाङ्ग और डमरू चारों हाथोंमें
धारण करनेवाली वृषके ऊपर सवारी करनेवाली रुद्रदेवता यजुर्वेदयुक्ता
भुवर्लोकके अधिष्ठात्री सावित्री नाम देवीका ध्यान करते हैं ॥ ५१ ॥

सायंकालमें—वृद्धा सायंकालीन सूर्यमण्डलमें स्थिता श्यामवर्णा
श्यामवस्त्र, गन्ध, माला धारण करनेवाली एकवक्त्रा शङ्ख, चक्र,
गदा और पद्म चारों हाथमें धारण करनेवाली, गरुडके ऊपर सवारी
करनेवाली विष्णु देवता सामवेद युता स्वर्गलोकके अधिष्ठात्री स्वरस्वती
नाम देवीका ध्यान करते हैं ॥ ५२ ॥

वरदेनेवाली वेद—माता गायत्री देवी अविनाशी वेदादिशास्त्र
प्रमाणित ब्रह्मको लक्ष्य करके आओ और हमलोगोंको उस तत्त्वका उपदेश
कोर ॥ ५३ ॥

ॐ ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां
धाम नामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूः ।
गायत्रीमावाहयामि ॥५४॥ ॐ आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे
सन्निधा भव । गायन्तं त्रायसे यस्माद् गायत्री त्वमतः
स्मृता ॥५५॥

ऋष्यादि न्यास—ओंकारस्य ब्रह्मऋषिरग्निदेवता

(जगत कारण परमात्मा) आयातु (आओ) । छन्दसां (छन्दोंके) माता
(जननी) गायत्री (गायत्री) नः (हमलोगोंको) इदं ब्रह्म (वेदप्रतिपाद्य
ब्रह्म) जुषस्व (उपदेश करें) ॥ ५३ ॥

ओजोऽसीति । हे गायत्री देवि ? त्वं ओजोऽसि (तुम ओजो नामक
धातु हो) सहोऽसि (शत्रुओंको पराजय करनेकी शक्ति हो) बलमसि
(शारीरिक बल हो) भ्राजोऽसि (दीप्तिके स्वरूपा हो) देवानां (देव-
तायोंके) धाम (तेज) नामासि (के स्वरूपा) विश्वमसि (विश्वके
स्वरूपा) विश्वायुः (विश्वकी आयुके स्वरूपा) सर्वमसि (सब हो)
अभिभूः (पाप समूहको दूर करनेवाली) ॐ (प्रणवके स्वरूपा हो) ।

हे गायत्री ! तुम देहके उपादानभूत तेज नामक धातु हो,
शत्रुओंको पराजय करनेकी शक्ति, शरीरका बल और प्रकाशके स्वरूपा
हो, तुम देवताओंके तेजका स्वरूप, तुम जगत् और जगत्की आयु,
और तुम ही सब हो, तुम ही सम्पूर्ण आयुके स्वरूपा, पापको दूर करने
वाली और प्रणवरूपा हो । तुमको आवाहन करता हूँ ॥५४॥

हे वर देनेवाली देवि ! आओ, और जप कार्यमें मेरे समीप रहो,
जो तुम्हारा गान करते हैं तुम उसीकी रक्षा करती हो, इसलिये तुमको
सब कोई गायत्री कहते हैं ॥५५॥

ओंकारके ब्रह्मा ऋषि, अग्नि देवता, गायत्री छन्दः, महा-

गायत्री छन्दो; महान्याहूतीनां परमेष्ठी प्रजापतिऋषिः प्रजा-
पतिर्देवता बृहतीछन्दो; गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता
देवता गायत्री छन्दः श्वेतोवर्णः अग्निर्मुखं, ब्रह्मा शिरो,
विष्णुर्हृदयं, रुद्रो ललाटं, पृथिवी कुक्षि, सैलोक्यं चरणाः,
सांख्यायनो गोत्रम्, अशेष पापक्षयाय जपे विनियोगः ॥५६॥

इसके बाद—

ॐ भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य
धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥५७॥

यथानियमसे गायत्री जप करें । जपका नियम और गायत्री मन्त्रका अर्थ
(३५ पृ० देखो) जपके बाद आत्मरक्षा करें—

आत्मरक्षा—ओं जातवेदसे इत्यस्य काश्यप ऋषि जातवे-
दाग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः शान्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

ओं जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वां, नावेवसिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥५८॥

व्याहृतियोंके परमेष्ठी प्रजापति ऋषि, प्रजापति देवता, बृहती छन्दः;
गायत्रीके विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्री छन्दः; श्वेतवर्णः—अग्नि
मुख, ब्रह्मा मस्तक, विष्णु हृदय, रुद्र ललाट, पृथिवी उदर, त्रिभुवन
चरण, और सांख्यायन गोत्र है, और अशेष पापके क्षयके लिये इसका
प्रयोग होता है ॥ ५६ ॥

जातवेदसे इस मन्त्रके काश्यपऋषि सर्वज्ञ अग्नि देवता
त्रिष्टुप् छन्दः जपमें शान्तिके लिये इसका प्रयोग होता है । मन्त्रकी
व्याख्या (३६ पृष्ठमें देखो) ॥५८॥

तच्छंयोरित्यस्य शंयु ऋषि विश्वेदेवा देवताः शकरी
छन्दः, नमोब्रह्मणे इत्यस्य प्रजापति ऋषि विश्वेदेवा देवता
जगती छन्दः शान्त्यर्थजपे विनियोगः । ओं तच्छंयो
राष्ट्रणीमहे ॥५६॥

ओं नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये ॥६०॥

इसके बाद दिक् समूहको प्रणाम करना होगा—

ओं पूर्वादि दिग्भ्यो नमः । ओं दिगीशेभ्यो नमः । ओं
संध्यायै नमः । ओं गायत्र्यै नमः । ओं सावित्र्यै नमः । ओं
सरस्वत्यै नमः । ओं सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः ॥६१॥

(विसर्जन)

ओं उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्द्धनि । ब्राह्म-
णेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथा सुखं ॥६२॥

तच्छमिति । शं (रोगोंके शान्तिकारक) योः (भविष्यत् होनेवाला
रोगोंके विनाशक) तत् (कर्म) आवृणोमहे (प्रार्थना करते हैं) ॥५९॥

तच्छंयो—इस मन्त्रके शंयु ऋषि, विश्वदेवगण देवता, जगती छन्दः,
शान्तिके लिये इसका प्रयोग होता है । जो कर्म उपस्थित रोगोंके शान्ति-
कारक और होनेवाले रोगोंके विनाशक हैं उस कर्मकी प्रार्थना करते हैं ॥५९॥

ब्रह्माको प्रणाम करते हैं और अग्निको प्रणाम करते हैं ॥६०॥

पूर्वादि दिक्समूहको, दिशाओंके अधिपति समूहको, सन्ध्याको, गाय-
त्रीको, सावित्रीको, सरस्वतीको और सब देवताओंको प्रणाम करते हैं ॥६१॥

हे देवि ! आप भूतलमें स्थित सुमेरु पर्वतके मस्तकमें उत्तम शिखर-
पर अवस्थान करती हैं, (अर्थात् देहरूप क्षेत्रमें मस्तकस्थित सहस्रदल
कमलमें ठहरती हैं) आप ब्राह्मणोंकी अनुज्ञा पाकर आनन्दके साथ अपने
स्थानमें गमन करें ॥ ६२ ॥

इसके बाद ब्रह्मयज्ञके मन्त्र पढ़कर जिनका तर्पणमें अधिकार है वे तर्पण करें । और इसके अनन्तर—

“ओं नमो विवस्वते” इत्यादि मन्त्र पढ़कर सूर्यार्घ्य देकर जवाकुसुमसङ्काशमित्यादि मन्त्रसे सूर्यको प्रणाम करें ❀

इति ऋग्वेदीय सन्ध्याप्रयोगः समाप्तः ।

गायत्री-हृदयम् ।

ओं नमस्कृत्य भगवान् याज्ञवल्क्यः स्वयम्भुवं परिपृच्छति । त्वं ब्रुहि ब्रह्मन् ! गायत्र्युत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि । ब्रह्मज्ञानोत्पत्तिं प्रकृतिं परिपृच्छामि ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच । प्रणवेन व्याहृतिभिः प्रवर्त्तते तमसस्तु परं ज्योतिः । कः पुरुषः ? स्वयम्भूर्विष्णुरिति । सोऽपः सृजति । अथ तास्वप्सङ्गुल्या मन्थयते । मन्थमानात् फेनो भवति । फेनाद्बुद्बुदो भवति । बुद्बुदादण्डं भवति । अण्डाद्वायुर्भवति । वायोरग्निर्भवति । अग्नेरोङ्कारो भवति । ओंकाराद् व्याहृति

भगवान् याज्ञवल्क्यजीने नमस्कार करके ब्रह्माजीसे पूछा—हे ब्रह्मन् आप कहिये, गायत्रीकी उत्पत्ति कैसे हुई है, मुझे सुननेकी इच्छा है । जिससे ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति होती है, उस प्रकृतिके विषयमें हम पूछते हैं ॥ १ ॥ भगवान् बोले—प्रणव और व्याहृतिके साथ तमोगुणसे अतीत परम ज्योति नित्य विराजित हैं । वह ज्योतिर्मय पुरुष कौन है ? वह स्वयम्भू विष्णु हैं । उन्होंने जलकी सृष्टि की । इसके बाद अंगुलियोंसे उस जलको मन्थन किया । मथनेसे फेन हुआ । फेनसे बुद्बुद (पानीका बुलबुला) उत्पन्न हुए । बुद्बुदसे अण्डकी उत्पत्ति हुई । अण्डसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे ओंकारकी उत्पत्ति हुई है । ओंकारसे व्याहृति, व्याहृतिसे

❀ मन्त्र और मन्त्रकी व्याख्या—(पृ० ३८ देखो)

भवति । व्याहृत्या गायत्री भवति । गायत्र्याः सावित्री भवति ।
 सावित्र्याः सरस्वती भवति । सरस्वत्याः वेदा भवन्ति ।
 वेदेभ्योः ब्रह्मा भवति । ब्रह्मणो लोका भवन्ति । तस्माल्लोकाः
 प्रवर्तन्ते । चत्वारो वेदाः सोपनिषदः सेतिहासाः । सर्वे ते
 गायत्र्याः प्रवर्तन्ते । यथाग्निर्देवानां, ब्राह्मणो मनुष्याणां,
 मेरुः शिखरिणां, गङ्गा नदीनां, वसन्तो ऋतूणां, ब्रह्मा प्रजा-
 पतीनां, एवमसौ मुख्या । गायत्र्या गायत्रीछन्दो भवति
 ॥ २ ॥ किं वै भूः ? किं भुवः ? किं स्वः ? किं
 महः ? किं जनः ? किं तपः ? किं सत्यं ? किं तत् ?
 किं सवितुः ? किं वरेण्यं ? किं भर्गः ? किं देवस्य ?
 किं धीमहि ? किं धियः ? किं यः ? किं नः ? किं प्रचोदयात् ?
 ॥ ३ ॥ भूरिति भूलोको, भुव इत्यन्तरिक्ष लोकः, स्वरिति

गायत्री, गायत्रीसे सावित्री, सावित्रीसे सरस्वती, सरस्वतीसे वेद, वेदसे ब्रह्मा,
 और ब्रह्मासे चौदह भुवन उत्पन्न हुये । उसी समयसे लोक समूह वर्तमान
 हैं । वेद चार हैं । उन वेदोंके भी अंग, उपनिषद् और इतिहास हैं, वे सभी
 गायत्रीसे हुए हैं । देवताओंमें जैसे अग्नि, मनुष्योंमें ब्राह्मण, पर्वतोंमें सुमेरु,
 नदीयोंमें गंगा, ऋतुओंमें वसन्त, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, ऐसा ही सभीसे गायत्री
 प्रधान है । गायत्रीका गायत्री छन्द होता है ॥ २ ॥ भूः क्या है ? भुवः किस-
 को कहते हैं ? स्वः क्या है ? महः क्या है ? जनः किसको कहते हैं ? तपः
 क्या है ? सत्य क्या है ? तत् क्या है ? सवितुः किसको कहते हैं ? वरेण्यं
 क्या है ? भर्गः क्या है ? देवस्य क्या है ? धीमहि किसको कहते हैं ?
 धियः क्या है ? नः क्या है ? प्रचोदयात् किसको कहते हैं ? ॥ ३ ॥ भूः—
 पृथिवी लोक, भुवः—आकाशलोक, स्वः—स्वर्गलोक, महः—महर्लोक, जनः—

स्वर्लोको, महरिति महर्लोको, जन इति जनलोकस्तप इति तपोलोकः, सत्यमिति सत्यलोकः, भूर्भुवःस्वरिति त्रैलोक्यं । तदिति तेजः, यत्तेजः सोऽग्निः सवितादित्योऽयं वै वरेण्यं, अन्नमेव प्रजापतिः । भर्ग इत्यापो वै भर्गः यदापस्तत् सर्व-देवताः । देवस्य सवितुर्देवो वा यः पुरुषः स विष्णुः । धीमहीत्यैश्वर्यं, यदैश्वर्यं स प्राण इत्यध्यात्मं, यदध्यात्मं तत् परमं पदं, तन्महेश्वरः । धिय इति महीति, पृथिवी मही । यो नः प्रचोदयादिति कामः, काम इमान् लोकान् प्रच्यावयते । यो नृशंसो योऽनृशंसोऽस्याः स परोधर्म इत्येषा वै गायत्री ॥ ४ ॥ किं गोला ? कत्यक्षरा ? कतिपादा ? कतिकुक्षिः ? कति शीर्षा ? ॥ ५ ॥ साङ्ख्यायन-

जनलोक, तपः—तपोलोक, सत्य—सत्यलोक, भूर्भुवः स्वः कहनेसे त्रिलोक समझे जाते हैं । तत् शब्दसे तेज, जो तेज सोई अग्नि हैं, सविता सूर्यको कहते हैं, वरेण्य—अन्न, जो अन्न सोई प्रजापति हैं । भर्ग शब्दसे अप, अप कहनेसे समस्त देवता समझे जाते हैं । देव सविता अर्थात् देव शब्दसे पुरुष और पुरुष विष्णुको कहते हैं । धीमहि अर्थात् ऐश्वर्यका ध्यान करते हैं । ऐश्वर्यका अर्थ प्राण, अर्थात् अध्यात्म, अध्यात्म शब्दसे परम पद समझे जाते हैं और वह परमपद ही महेश्वर हैं । धियः शब्दसे—मही, मही पृथिवीको कहते हैं । योनः प्रचोदयात् अर्थात् काम, काम ही इस लोकके सञ्चालक हैं । जो काम असत् कर्मके सञ्चालक, वह क्रूर है, और वह सत् कर्मके सञ्चालक होकर अक्रूर (सच्चे) होते हैं; इसीरूपसे परिचालन करना ही गायत्रीका असाधारण धर्म है । गायत्रीका यही स्वरूप है ॥ ४ ॥ गायत्रीका गोत्र क्या है ? अक्षर कितने हैं ? पाद कितने हैं ? कुक्षि कितने हैं ? मस्तक कितने हैं ? ॥ ५ ॥ साङ्ख्यायन गो, त्र

गोत्रा, चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री, त्रिपदा, षट्कुक्षिः, पञ्च
 शीर्षा ॥ ६ ॥ केऽस्यास्त्रयः पादाभवन्ति ? का अस्याः षट्-
 कुक्षयः ? कानि च पञ्च शीर्षाणि ? ॥ ७ ॥ ऋग्वेदोऽस्याः
 प्रथमः पादो भवति, यजुर्वेदो द्वितीयः, सामवेद स्तुतीयः ।
 पूर्वादिक् प्रथमा कुक्षिर्भवति, दक्षिणा द्वितीया, पश्चिमा तृतीया,
 उत्तरा चतुर्थी, ऊर्द्धा पञ्चमी, अधोऽस्याः षष्ठी । व्याकरण
 मस्याः प्रथमं शीर्षं भवति, शिञ्चाद्वितीयं, कल्पस्तुतीयं, निरुक्तं
 चतुर्थं, ज्योतिषामयनमिति पञ्चमं ॥ ८ ॥ किं लक्षणं ?
 किं विचेष्टितं ? किमुदाहृतं ? ॥ ९ ॥ लक्षणं मीमांसा,
 अथर्ववेदो विचेष्टितं, छन्दो विचतिरुदाहृतं ॥ १० ॥ को वर्णः
 कः स्वरः ? ॥ ११ ॥ श्वेतो वर्णः षट्स्वराः । पूर्वा भवति
 गायत्री, मध्यमा भवति सावित्री, पश्चिमा सन्ध्या सरस्वती ।

चौबीस अक्षर, तीन पाद, छः कुक्षि. और पांच मस्तक हैं ॥ ६ ॥ इनके तीन
 पाद, पांच मस्तक. और छः कुक्षि कौन कौन हैं ? ॥ ७ ॥ ऋग्वेद प्रथमपाद,
 यजुर्वेद द्वितीय, और सामवेद तृतीय पाद हैं । पूर्वदिक् प्रथम, दक्षिणदिक्
 द्वितीय, पश्चिमदिक् तृतीय, उत्तरदिक् चतुर्थ, ऊर्द्धदिक् पञ्चम और अधो-
 दिक् षष्ठ कुक्षि हैं । व्याकरण शास्त्र प्रथम मस्तक, शिक्षाशास्त्र
 द्वितीय, कल्प शास्त्र तृतीय, निरुक्त चतुर्थ, ज्योतिषशास्त्र पञ्चम मस्तक हैं
 ॥ ८ ॥ गायत्रीका लक्षण क्या है ? चेष्टा कौनसी है ? उदाहरण क्या
 है ? ॥ ९ ॥ मीमांसा इनके लक्षण, अथर्ववेद चेष्टा, और छन्द समूह
 उदाहरण हैं ॥ १० ॥ इसका वर्ण क्या है ? स्वर क्या है ? ॥ ११ ॥
 श्वेतवर्ण, (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित) यह छः
 स्वर हैं । वह प्रातः सन्ध्यामें गायत्री, सायं सन्ध्यामें सावित्री और

रक्ता गायत्री, श्वेता सावित्री, कृष्णा सरस्वती ॥ १२ ॥
 प्रणवे नित्ययुक्ता स्याद् व्याहृतीषु च सप्तसु । सर्वेषा-
 मेव पापानां शङ्करे समुपस्थिते । शतसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री
 पावनं महत् ॥ १३ ॥ उषः काले रक्ता, मध्याह्ने श्वेतापराह्णे
 कृष्णा । पूर्वसन्धि ब्राह्मी, मध्यसन्धिमाहेश्वर्यपरसन्धिवैष्-
 णवी । हंसवाहिनी ब्राह्मी, वृषभवाहिनी माहेश्वरी,
 गरुडवाहिनी वैष्णवी ॥ १४ ॥ पूर्वाह्निकाले सन्ध्या
 गायत्री कुमारी रक्ताङ्गी रक्तवासा त्रिनेत्रा पाशाङ्कु-
 शाक्षमालाकमण्डलुकरा हंसारूढा ऋग्वेदसहिता ब्रह्म-
 दैवत्या भूलोकव्यवस्थितादित्यपथगामिनी ॥ १५ ॥
 मध्याह्निकाले-सन्ध्या सावित्री युवती श्वेताङ्गी श्वेतवासा
 त्रिनेत्रा पाशाङ्कुशत्रिशूलडमरुहस्ता वृषभारूढा यजुर्वेद-

मध्याह्न सन्ध्यामें सरस्वती होती हैं ॥ १२ ॥ वह सर्वदा प्रणव और सप्त
 व्याहृतिके साथ युक्त रहती है । यदि समस्त पाप इकट्ठे हो जाय तो गायत्रीके
 एक लक्ष जप करनेसे तुरन्त नाश हो जाते हैं ॥ १३ ॥ वह प्रातः कालमें रक्त-
 वर्णा, मध्याह्न कालमें श्वेतवर्णा और सायंकालमें कृष्णवर्णा होती है । प्रातः
 सन्ध्यामें ब्रह्माणी, मध्याह्नमें माहेश्वरी, और सायंसन्ध्यामें वैष्णवी होती
 हैं । ब्रह्माणी हंसवाहिनी, माहेश्वरी वृषभवाहिनी और वैष्णवी गरुड वाहिनी
 होती हैं ॥ १४ ॥ प्रातः सन्ध्यामें गायत्री-कुमारी, रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रा, त्रिनयना,
 पाश, अङ्कुश, जपमाला और कमण्डलु धारण करनेवाली हंसारूढा ऋग्वेदसे
 युक्ता ब्रह्मदैवत्या, भूलोकके रहनेवाली, और सूर्य पथमें गमन करनेवाली
 हैं ॥ १५ ॥ मध्याह्नसन्ध्यामें सावित्री युवती, श्वेतवर्णा, श्वेतवस्त्रा, त्रिनयना,
 पाश, अङ्कुश, त्रिशूल और डमरु हाथोंमें धारण करनेवाली,

सहिता रुद्रदेवत्या भुवर्लोकव्यवस्थितादित्यपथगामिनी
 ॥१६॥ सायाह्नकाले संध्या सरस्वती वृद्धा कृष्णाङ्गी कृष्ण-
 वासा त्रिनेत्रा शंखचक्रगदापद्महस्ता गरुडारूढा सामवेद-
 सहिता विष्णुदेवत्या स्वर्लोकव्यवस्थितादित्यपथगामिनी
 ॥१७॥ कान्यत्तरदेवतानि भवन्ति ? ॥१८॥ प्रथममाग्नेयं,
 द्वितीयं प्राजापत्यं, तृतीयं सौम्यं, चतुर्थमैशानं, पञ्चममा-
 दित्यं, षष्ठं बार्हस्पत्यं, सप्तमं भगदेवत्यम्, अष्टमं पितृदेव-
 त्यम्, नवममर्यमणं, दशमं सावित्रं, एकादशं त्वाष्ट्रं, द्वादशं
 पौष्णं, त्रयोदशमैन्द्राग्न्यं, चतुर्दशं वायव्यं, पञ्चदशं वामदेव्यं,
 षोडशं मैत्रावरुणं, सप्तदशं, बाभ्रव्यं, अष्टादशं वैश्वदेव्यम्,
 एकोनविंशतिकं वैष्णव्यं, विंशतिकं वासवम्, एकविंशतिकं
 तौषितं, द्वाविंशतिकं कौवेरं, त्रयोविंशतिकं आश्विनं, चतु-

वैलके ऊपर सवारी करनेवाली, यजुर्वेदसे युक्ता रुद्र देवता
 भुवर्लोकके रहनेवाली और सूर्यपथमें गमन करनेवाली हैं ॥१६॥ सायं
 सन्ध्यामें सरस्वती—वृद्धा, कृष्णवर्णा, त्रिनयना, शंख, चक्र
 गदापद्मधारिणी गरुड़के ऊपर सवारी करनेवाली, सामवेदसे युक्ता विष्णु-
 देवता स्वर्गलोकके रहनेवाली और सूर्यपथमें गमन करनेवाली होती हैं
 ॥१७॥ प्रत्येक अक्षरके देवता कौन कौन हैं ? ॥१८॥ प्रथम अक्षरके
 देवता अग्नि, द्वितीयके प्रजापति, तृतीयके सोम, चतुर्थके ईशान, पञ्चमके
 अदिति, षष्ठके बृहस्पति, सप्तमके भग, अष्टमके पितृगण, नवमके अर्यमा,
 दशमके सविता, एकादशके त्वष्टा, द्वादशके पूषा, त्रयोदशके इन्द्र और
 अग्नि, चतुर्दशके वायु, पञ्चदशके वामदेव, षोडशके मित्र और वरुण
 सप्तदशके बभ्रु, अष्टादशके विश्वदेव, उनविंशके विष्णु, विंशके वसु,
 कविंशके तुषितगण, द्वाविंशके कुवेर, त्रयोविंशके अश्विनी कुमार और

विंशतिकं ब्राह्म्यं, इत्यक्षर दैवतानि भवन्ति ॥१६॥ औ-
मूह्नि सङ्गतास्ते, ललाटे रुद्रः, भ्रुवोर्मेषः, चक्षुषो श्रद्धादित्यौ,
कर्णयोः शुक्रबृहस्पती, नासिके वायुदेवत्ये, दंतौष्ठावुभयसन्ध्ये
मुखमग्निर्जिह्वा सरस्वती, ग्रीवा साध्यानुगृहीतिः, स्तनयोर्व-
सवः, बाह्वोर्मस्तुतः, हृदयं पाज्जन्यमाकाशमुदरं, नाभिरन्तरि-
क्षं, कटिरिन्द्राग्नी, जघनं प्राजापत्यं, कैलासमलयावूरु,
विश्वेदेवा जानुनी, जह्नुकुशिकौ जङ्घाद्वयं, खुराः पितरः
पादौ वनस्पतयः, अंगुलयो रोमाणि, नखाश्च मुहूर्त्ता
स्तऽपि ग्रहाः केतुर्मासा ऋतवः संध्याकालस्तथाच्छादनं संवत्-
सरो निमेषमहोरात्र आदित्यश्चन्द्रमाः ॥२०॥ सहस्र परमां
देवीं शतमध्यां दशां वरां । सहस्रनेत्रां गायत्रीं शरण-
महं प्रपद्ये ॥२१॥ ॐ तत् सवितुर्वरेण्याय नमः । ओतत्

चतुर्विंश अक्षरके देवता ब्रह्मा होते हैं ॥ १९ ॥ इनके मस्तकमें स्वर्ग
ललाटमें रुद्र, भ्रूयुगलमें मेघ, दोनों नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य, दोनों कानमें
शुक्र और बृहस्पति, दोनों नाकमें वायु, दन्त और ओष्ठमें दोनों सन्ध्यायें,
मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें साध्यगण, स्तनद्वयमें वसुगण,
दोनों बाहुमें मरुद्गण, हृदयमें इन्द्र, उदरमें आकाश, नाभिमें आकाश,
कमरमें इन्द्र और अग्नि, जघनमें प्रजापति, कैलास और मलयपर्वत इनके
ऊरु, विश्वदेवगण इनके जानु, जह्नु और कुशिक इनके जङ्घा, पितृगण इनके
खुर, वनस्पतिगण इनके चरण, मुहूर्त्त, ग्रह, धूमकेतु, मास, ऋतु और सन्ध्या-
काल इनके अंगुली, लोम और नख, संवत्सर इनके आच्छादन, दिन, रात्रि,
सूर्य और चन्द्र इनके निमेष समझे जाते हैं ॥२०॥ इनके सहस्र वार जप
उत्तम, शतवार जप मध्यम और दशवार जप अधम होता है । हजारों नयन-
वाली देवी गायत्रीकी शरण लेता हूं ॥२१॥ ओं तत् सवितुर्वरेण्यं इत्यादि

पूर्वजपाय नमः । ओं तत् प्रातरादित्यप्रतिष्ठाय नमः ॥२२॥
 सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो
 रात्रिकृतं पापं नाशयति । तत् सायं प्रातरधीयानो पापोऽ-
 पापो भवति ॥२३॥ य इदं गायत्रीहृदयं ब्राह्मणः पठेत्
 अपेयपानात् पूतो भवति, अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति,
 अज्ञानात् पूतो भवति, स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति, गुरुतल्प-
 गमनात् पूतो भवति, अपङ्क्तिपावनात् पूतो भवति, ब्रह्मह-
 त्यायाः पूतो भवति, अब्रह्मचारी सब्रह्मचारी भवति । इत्यनेन
 हृदयेनाधीतेन क्रतुः सम्यगिष्टो भवति, षष्टिर्गायत्र्याः शत-
 सहस्राणि जप्तानि भवन्ति । अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राह-
 येत् । अथ सिद्धिर्भवति ॥ २४ ॥ इदं ब्राह्मणो नित्यमधी-

मन्त्रको प्रणाम करते हैं । जपके पहले उच्चारणीय 'ॐ तत्को' हम प्रणाम करते
 हैं । प्रातः कालके सूर्यमण्डलमें स्थित 'ॐ तत्को' प्रणाम करते हैं ॥२२॥
 सायंकालमें गायत्रीका पाठ करनेसे दिनके किये हुए पाप नष्ट होते हैं ।
 प्रातःकालमें पाठ करनेसे रात्रिके किये हुए पाप नष्ट होते हैं । अतः सायं
 प्रातः दोनों समय पाठ करनेसे पापी पापशून्य हो जाते हैं ॥२३॥ जो
 ब्राह्मण इस गायत्री-हृदयको पढ़ते हैं, वह मद्यादिपान जन्य पापसे मुक्त
 होते हैं, अभक्ष्य-भक्षण-जन्यपापसे मुक्त होते हैं, अज्ञानसे मुक्त होते हैं, सुवर्ण-
 हरण जन्य पापसे मुक्त होते हैं, गुरुपत्नीके हरणजन्य पापसे मुक्त होते हैं,
 जिनके साथ एक पङ्क्ति भोजन निषिद्ध है उनके साथ भोजन जन्य पापसे
 मुक्त होते हैं, ब्रह्महत्या जन्य पापसे मुक्त होते हैं और अब्रह्मचारी सब्रह्मचारी
 होते हैं । इस गायत्रीहृदयका पाठ करनेसे विधिपूर्वक अनुष्ठित यज्ञका फल
 लाभ होता है । साठ लाख गायत्री जपका फल होता है । आठ ब्राह्म-
 णको अच्छी तरहसे शिक्षा देनेसे इसकी सिद्धि होती है ॥२४॥ ब्राह्मण-

यीत, सर्वपापैः प्रमुच्यते सर्वपापैः प्रमुच्यते इति । ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयते इत्याह भगवान् याज्ञवल्क्यः ॥२५॥
इति गायत्री-हृदयं सम्पूर्णम् ।

गायत्री-शापोद्धार ।

ओं अस्य गायत्रीशापविमोचनमन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्री छन्दो वरुणो देवता ब्रह्मशापविमोचने विनियोगः ।

ओं यद्ब्रह्मेति ब्रह्मविदोविदुस्त्वां पश्यन्ति धीराः ।
सुमनसो वा गायन्ति त्वं ब्रह्मशापाद्विमुक्ताभव ॥१॥

गायत्र्या वशिष्ठ शापविमोचनमन्त्रस्य वशिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वशिष्ठदेवता वशिष्ठशापविमोचने विनियोगः ।

गण इसका प्रत्यह पाठ करनेसे समस्त पापोंसे मुक्त होते हैं, और सुनिश्चित ब्रह्मलोकमें वास होता है । भगवान् याज्ञवल्क्यने यह कहा है ॥२५॥
गायत्री-जप करनेके पहिले और गायत्री-जपके बाद गायत्रीका शापोद्धार और गायत्रीकवच भी समर्थ होनेसे पाठ करना उचित है ।

गायत्रीके ब्रह्मशापमोचन मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि गायत्रीछन्द, वरुण देवता, और ब्रह्मशापके मोचनमें इसका प्रयोग होता है ।
हे गायन्नि ! ब्रह्मजानी जिसको ब्रह्म कहते हैं वही आप हैं । पण्डित गण शुद्धचित्तमें उसी रूपसे आपको देखते हैं । आप ब्रह्मशापसे मुक्त हो जावें ॥ १ ॥

गायत्रीके वशिष्ठशाप विमोचन मन्त्रके वशिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द वशिष्ठ देवता हैं और वशिष्ठके शापके दूर करनेमें इसका प्रयोग होता है ।

ओं अर्कज्योतिरहंब्रह्मा ब्रह्मज्योतिरहंशिवः शिवज्यो-
तिरहं विष्णुर्विष्णुज्योतिश्शिवः परं । गायत्रि त्वं वशिष्ठ
शापाद्विमुक्ता भव ॥२॥

ओं विश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्यविश्वामित्र ऋषि-
रनुष्टुप्छन्दो आद्या देवता विश्वामित्रशापविमोचने
विनियोगः ।

ओं अहो देवि महादेवि दिव्ये संधे सरस्वति । अजरे
अमरे चैव ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते ॥ गायत्रि त्वं विश्वामित्र-
शापाद्विमुक्ता भव ॥३॥

हम सूर्यकी ज्योति ब्रह्मा हम ब्रह्माकी ज्योति शिव, हम शिवकी
ज्योति विष्णु और हम विष्णुकी ज्योति शिव हैं, हे गायत्रि आप वशिष्ठके
शापसे मुक्त हो जावें ॥ २ ॥

विश्वामित्र शापविमोचन मन्त्रके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप्छन्द और
आद्या देवता हैं और विश्वामित्रके शापके मोचनमें इसका प्रयोग होता
है । हे देवि ! हे महादेवि ! हे ज्ञानरूपे ! हे सन्ध्यास्वरूपे ! हे सरस्वति !
हे जरारहिते ! हे मरणवर्जिते ! हे वेदमातः ! आपको प्रणाम करते हैं । हे
गायत्रि, आप विश्वामित्रशापसे मुक्त हो जावें ॥ ३ ॥

❖ किसी समय ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्रजीने अपनी अपनी
सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये गायत्रीकी उपा-
सना की थी । गायत्रीके प्रत्यक्ष होकर उन लोगोंकी इच्छा पूर्ण न हुई अतः
वे क्रुद्ध होकर शाप दिये कि, तुम्हारी शक्ति नष्ट हो जाय । इसके
बाद देवताओंके बहुत प्रार्थना करनेपर उन लोगोंने कहा कि, इस मन्त्रके
पाठ करनेसे गायत्री देवी शापसे मुक्त हो जायगी ।

गायत्री-कवच ।

ओं गायत्री पूर्वतः पातु सावित्रीपातुदक्षिणे ।
 ब्रह्मसन्ध्यातु मे पश्चादुत्तरेतु सरस्वती ॥
 पावकी मे दिशं पातु पावकी जलशायिनी ।
 यातुधानीं दिशंरक्षेत्पातुधानी भयङ्करी ॥
 पावयानीं दिशंरक्षेत्पापानाञ्च विनाशिनी ।
 दिशं रौद्रीं सदा पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी ॥
 ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ।
 एवं दशदिशो रक्षेत् सर्वाङ्गे भुवनेश्वरी ॥
 तत्पदं पातु मे पादं जंघे मे सवितुः पदं ।
 वरेण्यं कटिदेशन्तु नाभिर्भर्गस्तथैवच ॥

गायत्री पूर्व दिशाकी रक्षा करें, सावित्री दक्षिणकी ओर, ब्रह्मसन्ध्या पश्चात् और सरस्वती उत्तर दिशाकी रक्षा करें । पावकी देवी अग्निकोण, (उत्तर पश्चिम दिशा) यातुधानी नैऋत कोण (दक्षिण पश्चिम दिशा) की रक्षा करें । पापके विनाश करनेवाली देवी वायु कोण (दक्षिण पूर्व दिशा) और रुद्ररूपिणी देवी ईशान कोण (उत्तर पूर्व दिशा) की रक्षा करें । ब्रह्माणी मेरे ऊर्ध्वभाग, वैष्णवी अधोभाग, इस तरहसे भुवनेश्वरी समस्त अङ्गोंके दशदिशायोंकी रक्षा करें । 'तत्पदं' मेरे पाद, 'सवितुः' मेरे जांघ 'वरेण्यं' कटि देश, 'भर्गः' नाभि, 'देवस्य' मेरे हृदय 'धीमहि' गलदेश, 'धियोयोः', मेरे नेत्र, 'नः' ललाट इस तरह

देवस्य मे पातु हृदयं धीमहीति गलन्तथा ।
 धियोयो इति मे नेत्रं नः पदन्तु ललाटकम् ॥
 एवं पादादि मूर्द्धान्तं मूर्द्धानं मे प्रचोदयात् ।
 इदन्तु कवचं पुण्यं हत्याकोटिविनाशनम् ॥
 चतुःषष्टिकलाविद्या सर्वपापप्रणाशिनी ।
 जपारम्भे च गायत्री जपान्ते कवचं पठेत् ॥
 गोस्त्रीब्रह्मवधादीनि मित्रद्रोहादिपातकैः ।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
 इति श्रीगायत्री कवचम् समाप्तं ।

ब्रह्मयज्ञ ।

वेदपाठ करनेसे ब्रह्म यज्ञ होता है । वह मध्याह्न सन्ध्याके बाद किया जाता है । सम्पूर्ण वेदका पाठ करना असम्भव है, इसलिये प्रत्येक वेदके प्रथम मन्त्र यहां दिया गया है, इसके पाठ करनेसे ब्रह्म-यज्ञका फल लाभ होता है ।

पैरसे लेकर मस्तक पर्यन्त और मस्तककी रक्षा प्रचोदयात् करें । यह कवच कोटि हत्या जनित पापका विनाश करनेवाला और सब पापोंके नाश करनेवाली चतुःषष्टी विद्याके स्वरूप हैं । गायत्रीके जपके आरंभमें और अन्तमें इस कवचका पाठ करना चाहिये । इससे गोवध, स्त्रीवध, मित्रद्रोहादि सब पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मके स्वरूपको प्राप्त करते हैं ।
 गायत्री कवच समाप्त हुआ ।

(ऋग्वेदका प्रथम मन्त्र)

ॐ अग्निमीड इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्नि देवता
ब्रह्मयज्ञजपे विनियोगः ।

ॐ अग्निमीडे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजं । होतारं रत्न-
धातमम् ॥ १ ॥

(यजुर्वेदका प्रथम मन्त्र)

इपे त्वेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिरुष्णिक् छन्दो वायुर्देवता ब्रह्मयज्ञजपे
विनियोगः ।

ॐ इपे त्वोज्जे त्वा वायवः स्थ देवो वः सविता प्रापयतु ।
श्रेष्ठतमाय कर्मणे ॥ २ ॥

अग्निमीड इति । अग्निम् (अग्नि नामक देवताको) ईडे (स्तव
करें) अग्नि कैसे ? यज्ञस्य पुरोहितं (यज्ञके पूर्व दिशामें स्थित) देव
(प्रकाशमान) फिर कैसे ? होतारं ऋत्विजं (होता नामक पुरोहित)
रत्नधातमम् (यज्ञके फलरूप रत्नोंके धारण करनेवाला) ॥ १ ॥

इपे इति (हे शाखायें) इपे (वृष्टिके लिये) त्वा (तुमको छेदन
करता हूं) । ऊज्जे (अन्नके लिये) त्वा (तुमको ले जाता हूं) वायवः
स्थः (हे गोवत्सगण तुम अपनी माताके पाससे जाउ) सविता (जगतके
प्रसव करनेवाले) देवः (परमेश्वर) वः (हे गाभीगण ! आप लोगोंको)
प्रापयतु (बहुतृणयुक्त वन प्रदान करें) श्रेष्ठतमाय कर्मणे (सर्वश्रेष्ठ
कर्मके लिये ॥ २ ॥

यज्ञभूमिके पूर्वकी ओर जिनकी स्थापना होती है, जो कि प्रकाशमान,
होता नामक पुरोहित और यज्ञफलरूपरत्नोंके दान कर्ता ऐसे अग्निकी
हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

हे शाखायें ! वृष्टिके लिये तुमको काटता हूं, और अन्नके लिये तुमको
ले जाता हूं । हे गोवत्सगण ! तुम अपनी माताके पाससे घरको लौट
जाओ । (क्योंकि तुम्हारे गौके साथ रहनेसे सन्ध्याके समय हम लोगोंको

सामवेदका प्रथम मन्त्र ।

अग्न आयाहीत्यस्य गौतम ऋषि गायत्रीछन्दोऽग्निदेवता ब्रह्मयज्ञ जपे विनियोगः ।

ॐ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ॥३॥

(अथर्ववेदका प्रथम मन्त्र)

शन्नोदेवीरित्यस्य पिप्पलाद ऋषिर्गायत्रीछन्द आपो देवता शान्तिकरणे विनियोगः ।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४॥

अग्न इति । हे अग्ने ! आयाहि (मेरे यज्ञके लिये आ जाओ) किस-लिये ? वीतये (हवि भक्षणके लिये) कैसे आवें ? गृणानः (हम लोगोंसे प्रार्थित हो) फिर किसलिये ? हव्य दातये (देवतायोंको हवि प्रदान करनेके लिये) होता (होता होकर) बर्हिषि (विस्तृत कुशायोंके ऊपर) निसत्सि (उपवेशन करो) ॥३॥

दुग्ध नहीं मिलेगा, और बिना दूधसे हवनके लिये घृत नहीं मिलेगा) हे गाभी गण ! मेरे यज्ञके लिये सविता देव तुम लोगोंको बहुवृणयुक्त बनमें भेजें ॥२॥

हे अग्नि ! तुम आहुति भक्षणके लिये और देवतायोंको वह देनेके लिये आ जाओ । और हमसे प्रार्थित होकर होतारूपसे विस्तृत कुशायोंके ऊपर उपवेशन करें ॥३॥

५१ पृष्ठमें इस मन्त्रकी व्याख्या और अनुवाद दिया गया है ॥४॥

ॐ शान्तिः ।

त्रिवेदीयसन्ध्या समाप्त ।

सनातनधर्मकी पुस्तकें ।

धर्मकल्पद्रुम ।

श्रीस्वामी दयानन्द-विरचित ।

यह हिन्दुधर्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रंथ है । हिन्दु जातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी जरूरत है, उनमेंसे सबसे बड़ी भारी जरूरत एक ऐसे धर्मग्रंथकी थी कि, जिसके अध्ययन अध्यापन द्वारा सनातनधर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अंग—उपांगोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथही साथ वेदों और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप जिज्ञासुको भलीभांति विदित हो सके । इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्ममहामण्डलस्थ उपदेशकमहाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी महाराजने इस ग्रंथका प्रणयन करना प्रारम्भ किया है । इसमें वर्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृतरूपसे दिये गये हैं । अबतक इसके सात खण्डोंमें जो अध्याय प्रकाशित हुए हैं । वे ये हैं:— धर्म, दानधर्म, तपोधर्म, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ, ज्ञानयज्ञ, महायज्ञ, वेद, वेदांग, दर्शनशास्त्र [वेदोपांग], स्मृतिशास्त्र, पुराणशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, उपवेद, ऋषि और पुस्तक, साधारणधर्म और विशेषधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, नारी-

धर्म, (पुरुषधर्मसे नारीधर्मकी विशेषता) आर्यजाति, समाज और नेता, राजा और प्रजाधर्म, प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म आपद्धर्म, भक्ति और योग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग; गुरु और दीक्षा, वैराग्य और साधन, आत्मतत्त्व, जीवतत्त्व, प्राण और पीठतत्त्व, सृष्टिस्थितिप्रलयतत्त्व, ऋषि देवता और पितृतत्त्व अवतारतत्त्व, मायातत्त्व, त्रिगुणतत्त्व, त्रिभावतत्त्व, कर्मतत्त्व, मुक्तितत्त्व, पुरुषार्थ और वर्णाश्रमसमीक्षा, दर्शनसमीक्षा, धर्मसम्प्रदायसमीक्षा, धर्मग्रन्थ समीक्षा और धर्ममतसमीक्षा । इस ग्रन्थसे आजकल अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्मग्रंथों और धर्मप्रचारके द्वारा जो हानि हो रही है, वह सब दूर होकर यथार्थरूपसे सनातन वैदिक धर्मका प्रचार होगा । इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें । इसमें और भी एक विशेषता यह है कि, हिन्दुशास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय आजकलकी पदार्थ विद्या (Science) के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे आजकलके नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें । इसके सातखण्ड प्रकाशित हो चुके हैं । प्रथम खण्डका मूल्य २) द्वितीयका १॥ तृतीयका २), चतुर्थका २), पंचमका २), षष्ठका १॥) और सप्तम खण्डका २) है । इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागजपर भी छापे गये हैं और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं । मूल्य ५) है ।

प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत ।

श्रीस्वामी दयानन्द-सम्पादित ।

इस ग्रंथमें आर्यजाति आदिका वासस्थान, उन्नतिका

आदर्शनिरूपण, शिक्षादर्श, आर्य्यजीवन, वर्णधर्म, आश्रमधर्म आदि विषय वैज्ञानिक युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ वर्णन किये गये हैं। यह ग्रन्थ धर्मशिक्षाके अर्थ बी० ए० क्लासका पाठ्य है। मूल्य प्रथम खण्डका २) द्वितीय खण्डका २)।

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत।

श्रीस्वामी दयानन्द-सम्पादित।

भारतक प्राचीन गौरव और आर्य्यजातिका महत्त्व जानने-के लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय संस्करण, परिवर्द्धित और सुन्दर होकर छप चुका है। यह ग्रन्थ भी बी० ए० क्लासका पाठ्य है। मूल्य १)

साधनचन्द्रिका।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित।

इसमें मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग इन चारों योगोंका संक्षेपमें अतिसुन्दर वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रथम वार्षिक एफ० ए० क्लासका पाठ्य है। मूल्य १॥१)

शास्त्रचन्द्रिका।

अज्ञाननाशिनी और ज्ञानजननीको विद्या कहते हैं। विद्या दो भागमें विभक्त है, एक परा विद्या और दूसरी अपरा विद्या। गुरुमुखसे प्राप्त होनेवाली ब्रह्मविद्या परा विद्या कहलाती है। परा विद्या ग्रन्थोंसे नहीं प्रकाशित होती, परन्तु ग्रन्थोंसे प्रकाशित होनेवाली विद्याको अपरा विद्या कहते हैं। अपरा विद्या भी पुनः दो भागोंमें विभक्त है, यथा लौकिक विद्या और पार-लौकिक विद्या। शिल्पकला, वाणिज्य, पदार्थविद्या, साइन्स, राजनीति, समाजनीति, युद्धविद्या, चिकित्साविद्या आदि सब लौकिक विद्याके अन्तर्गत हैं और वेद और वेदसम्मत दर्शन

पुराणादि शास्त्र सब पारलौकिक विद्याके अन्तर्गत माने गये हैं। पारलौकिक विद्याके दिग्दर्शनार्थ यह ग्रन्थ इस विचारसे बनाया गया है कि, जिससे विद्यार्थियोंको धर्मशिक्षा प्राप्त करनेमें सहायता प्राप्त हो सके। स्कूल, कालेज, पाठशाला आदिके विद्यार्थियोंको तथा गृहमें बालकोंको धर्मशिक्षाके निमित्त हिन्दुजातिकी विराट् धर्मसभा श्रीभारतधर्ममहामण्डलके साधु तथा विद्वानोंकी सहायतासे अनेक ग्रंथ प्रणीत होकर प्रकाशित हुए हैं यथा—सदाचारसोपान, धर्मप्रश्नोत्तरी, धर्मसोपान, चरित्रचंद्रिका, नीतिचन्द्रिका, आचारचंद्रिका, नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत, साधनचंद्रिका, प्रवीण-दृष्टिमें नवीन भारत इत्यादि। उसी धर्मशिक्षालक्ष्यको सामने रखकर यह ग्रन्थ भी प्रणीत हुआ है। इसके द्वारा स्कूल कालेज, पाठशालाओंके कार्यकर्त्ता गण, तथा बालकोंके माता—पितागण बालकोंको धर्मशिक्षा देकर लाभवान् होंगे। मूल्य १॥)

धर्मचंद्रिका ।

श्रीखामी दयानन्द-विरचित ।

एन्ट्रेंस क्लासके बालकोंके पठनोपयोगी उत्तम धर्मपुस्तक है। इसमें सनातनधर्मका उदार सार्वभौम स्वरूप वर्णन, यज्ञ, दान, तप आदि धर्माङ्गोंका विस्तृत वर्णन, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, आर्य्यधर्म, राजधर्म तथा प्रजाधर्मके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है। कर्मविज्ञान, सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ आदि नित्य कर्मोंका वर्णन, षोडश संस्कारोंके पृथक् पृथक् वर्णन और संस्कारशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि द्वारा मोक्षका यथार्थ मार्ग निर्देश किया गया है। इस ग्रन्थके पाठसे छात्रगण धर्मतत्त्व अवश्य ही अच्छी तरहसे जान सकेंगे। मूल्य १)

आर्य-गौरव ।

श्रीस्वामी दयानन्द-विरचित ।

आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है । यह ग्रन्थ स्कूली ६ वीं तथा १० वीं कक्षाका पाठ्य है । मूल्य ॥) आना ।

आचारचन्द्रिका ।

श्रीस्वामी दयानन्द-विरचित ।

यह भी स्कूलपाठ्य सदाचारसम्बन्धीय धर्मपुस्तक है । इसमें प्रातःकालसे लेकर रात्रिमें निद्राके पहलेतक क्या क्या सदाचार किसलिये प्रत्येक हिन्दू सन्तानको अवश्य ही पालने चाहिये, इसका रहस्य उत्तम रीतिसे बताया गया है और आधुनिक समयके विचारसे प्रत्येक आचार पालनका वैज्ञानिक कारण भी दिखाया गया है । यह ग्रन्थ बालकोंके लिये अवश्य ही पाठ करने योग्य है । यह स्कूलकी ८ वीं कक्षाका पाठ्य है । मूल्य ॥)

नीतिचन्द्रिका ।

श्रीस्वामी दयानन्द-विरचित ।

मानवीय जीवनका उन्नत होना नीतिशिक्षापर ही अवलम्बित होता है । कोमलमति बालकोंके हृदयोंपर नीतितत्त्व खचित करनेके उद्देश्यसे यह पुस्तिका लिखी गई है । इसमें नीतिकी सब बातें ऐसी सरलतासे समझाई गई हैं कि, इसी एकके ही पाठसे नीतिशास्त्रका ज्ञान हो सकता है । यह स्कूलकी ७ वीं कक्षाका पाठ्य है । मूल्य ॥)

चरित्रचन्द्रिका ।

सम्पादक पं० गोविन्दशास्त्री दुग्गेकर ।

इस ग्रन्थमें पौराणिक, ऐतिहासिक और आधुनिक महा-

पुरुषोंके सुन्दर मनोहर विचित्र चरित्र वर्णित हैं। यह ग्रन्थ स्कूलकी ६ ठी कक्षाका पाठ्य है। प्रथम भागका मूल्य १) और दूसरे भागका १।)

धर्मप्रश्नोत्तरी ।

श्रीस्वामी दयानन्द-विरचित ।

सनातनधर्मके प्रायः सिद्धान्त अतिसंक्षिप्त रूपसे इस पुस्तिकामें लिखे गये हैं। प्रश्नोत्तरीकी प्रणाली ऐसी सुन्दर रखी गई है कि, छोटे बच्चे भी धर्मतत्त्वोंको भलीभांति हृदयङ्गम कर सकेंगे। भाषा भी अति सरल है। यह ग्रन्थ स्कूलकी ४ थी कक्षाका पाठ्य है। कागज़ और छपाई बढ़िया होनेपर भी मूल्य केवल १) मात्र ।

परलोक रहस्य ।

श्रीमान् स्वामी दयानन्द-विरचित ।

मनुष्य मरकर कहां जाता है, उसकी क्या गति होती है, इस विषयपर वैज्ञानिक युक्ति शास्त्रीय प्रमाणोंके विस्तृतरूपसे वर्णन है। मूल्य १)

चतुर्दशलोकरहस्य ।

श्रीमान् स्वामी दयानन्द-विरचित ।

स्वर्ग और नरक कहां और क्या वस्तु है, उनके साथ हमारे इस मृत्युलोकका क्या सम्बन्ध है इत्यादि विषय शास्त्र और युक्तिके साथ वर्णन किये गये हैं। आजकल स्वर्ग नरक आदि लोकोंके विषयमें बहुत संशय फैल रहा है। श्रीमान् स्वामीजी महाराजने अपनी स्वाभाविक सरल युक्तियोंके द्वारा चतुर्दश लोकोंका रहस्य वर्णन करते हुए उस संदेहका अच्छा समाधान किया है। मूल्य १)

सती-चरित्र-चन्द्रिका ।

श्रीमान् पं० गोविन्दशास्त्री दुर्गावेकर सम्पादित ।

इस पुस्तकमें सीता, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी आदि ४४ सती स्त्रियोंके जीवन चरित्र लिखे गये हैं । मूल्य २)

नित्यकर्म चन्द्रिका ।

इस ग्रन्थमें प्रातःकालसे लेकर रात्रिपर्यन्त हिन्दूमात्रके अनुष्ठान करने योग्य नित्यकर्म वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंके साथ भलीभांति वर्णित किये गये हैं । मूल्य १)

धर्मसोपान ।

यह धर्मशिक्षाविषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है । बालकोंको इससे धर्मका साधारण ज्ञान भलीभांति हो जाता है । यह पुस्तक क्या बालकबालिका, क्या वृद्ध स्त्री-पुरुष सबके लिये बहुत ही उपकारी है । धर्मशिक्षा पानेकी ईच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मंगावें । यह स्कूलकी पूर्वी कक्षाका पाठ्य है । मू० १)

धर्म-कर्म-दीपिका ।

इस पुस्तकमें कर्मका स्वरूप, कर्मके भेद, संसारके लक्षण और भेद, वैदिक संस्कारोंका रहस्य, त्रिविध कर्मका वैज्ञानिक स्वरूप, कर्म संबंधसे मुक्ति, कर्मके साथ धर्मका मिश्र संबंध, धर्मरूप कल्पद्रुमका विस्तृत वर्णन, वर्णाश्रम धर्मकी महिमा और विज्ञान, उपासनारहस्य, उपासनाकी मूलभित्तिरूप पीठ रहस्य, धर्म कर्म और यज्ञ शब्दोंका वैज्ञानिक रहस्य और सदाचारका विज्ञान और महत्त्व प्रतिपादन किया गया है । यह ग्रंथ मूल और सुस्पष्ट हिन्दी अनुवाद सहित शास्त्रीय प्रमाण देकर छापा गया है, यह ग्रंथरत्न प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीके लिये उपादेय है । मूल्य ॥)

सदाचारसोपान ।

यह पुस्तक कोमलमति बालक-बालिकाओंकी धर्मशिक्षा-के लिये प्रथम पुस्तक है, यह स्कूलकी तीसरी कक्षाका पाठ्य है । मूल्य ७

कन्याशिक्षासोपान ।

कोमलमति कन्याओंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है । मूल्य ७

ब्रह्मचर्यसोपान ।

ब्रह्मचर्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है । सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रन्थकी पढ़ाई होनी चाहिये । मूल्य ११ आना ।

राजशिक्षासोपान ।

राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धार्मिक शिक्षा देनेके लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है, परन्तु सर्वसाधारणकी धर्म-शिक्षाके लिये भी यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है, इसमें सनातनधर्मके अंग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं । मूल्य ३१ तीन आना ।

साधनसोपान ।

यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुत ही उपयोगी है । इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है । बालक बालिकाओंको पहलेसे ही इस पुस्तकको पढ़ना चाहिये । यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ कर सकते हैं । मूल्य ११ चार आना ।

शास्त्रसोपान ।

सनातनधर्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रन्थमें वर्णित

है। सब शास्त्रोंका कुछ विवरण समझनेके लिये प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीके लिये यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य १) चार आना।

धर्मप्रचारसोपान।

यह ग्रन्थ धर्मोपदेश देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पंडितोंके लिये बहुत ही हितकारी है। मूल्य ३) आना।

उपदेश पारिजात।

यह संस्कृत गद्यात्मक अपूर्व ग्रन्थ है। सनातनधर्म क्या है, धर्मोपदेश किसको कहते हैं, सनातनधर्मके सब शास्त्रोंमें क्या क्या विषय हैं, धर्मवक्ता होनेके लिये किन किन योग्यताओंके होनेको आवश्यकता है, इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थमें हैं। संस्कृत विद्वान्मात्रको पढ़ना उचित है और धर्मवक्ता, धर्मोपदेशक, पौराणिक परिडत आदिके लिये तो यह ग्रन्थ सब समय साथ रखने योग्य है। मूल्य ॥) आना।

कल्किपुराण।

कल्कि पुराणका नाम किसने नहीं सुना है? इस कलियुगमें कल्कि महाराज अवतार धारण कर दुष्टोंका संहार करेंगे, उसका पूर्ण वृत्तान्त है। विशुद्ध हिन्दी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। धर्म-जिज्ञासुमात्रको इस ग्रंथको पढ़ना उचित है। मूल्य १॥)

योगदर्शन।

हिन्दी भाष्य सहित। इस प्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। सब दर्शनोंमें योगदर्शन सर्ववादी-सम्मत दर्शन है और इसमें साधनके द्वारा अन्तर्जगत् सब विषयोंका प्रत्यक्ष अनुभव करा देनेकी प्रणाली रहनेके कारण इसका पाठन और भाष्य एवं टीका निर्माण वही सुचारुरूपसे

कर सकता है, जो योगके क्रिया सिद्धांशका पारगामी हो। इस भाष्यके निर्माणमें पाठक उक्त विषयकी पूर्णता देखेंगे। प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बना दिया गया है कि, जिससे पाठकोंको मनोनिवेशपूर्वक पढ़नेपर कोई असम्बद्धता नहीं मालूम होगी और ऐसा प्रतीत होगा कि, महर्षि सूत्रकारने जीवोंके क्रमाभ्युदय और निःश्रेयसके लिये मानों एक महान् राजपथ निर्माण कर दिया है। इसका द्वितीय संस्करण छपकर तैयार है, इसमें इस भाष्यको और भी अधिक सुस्पष्ट, परिवर्द्धित और सरल किया गया है। मूल्य २) दो रुपया।

मंत्रयोगसंहिता ।

भाषानुवादसहित । योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रंथ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है इसमें मंत्रयोगके १६ अंग और क्रमशः उनके लक्षण, साधनप्रणाली आदि सब अच्छी तरहसे वर्णन किये गये हैं। इनमें मंत्रोंका स्वरूप और उपास्यनिर्याय बहुत अच्छा किया गया है और अनर्थकारी साम्प्रदायिक विरोधको दूर करनेके लिये यह एक मात्र ग्रंथ है, नास्तिकोंके मूर्तिपूजा, मंत्रसिद्धि आदि विषयोंमें जो प्रश्न होते हैं, उनका अच्छा समाधान है। मूल्य १)

हठयोगसंहिता ।

भाषानुवादसहित । योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें हठयोगके ७ अंग और क्रमशः उनके लक्षण साधनप्रणाली आदि सब अच्छी तरहसे वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे पूरा लाभ उठा सकते हैं। मूल्य III)

तत्त्वबोध ।

भाषानुवाद और वैज्ञानिक टीप्पणीसहित । यह मूल

वेदान्त ग्रन्थ श्रीशंकराचार्यकृत है। इसका वंगला अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। मूल्य =)

स्तोत्र कुसुमाञ्जली ।

इसमें पंचदेवता, अवतार और ब्रह्मकी स्तुतियोंके साथ साथ आजकलकी आवश्यकतानुसार धर्मस्तुति, गंगादि पवित्र तीर्थोंकी स्तुति, वेदान्तप्रतिपादक स्तुतियां और काशीके प्रधान देवता श्रीविश्वनाथादिकी स्तुतियां हैं। मूल्य ।) आना।

कर्ममीमांसादर्शन ।

यह लुप्तप्राय दर्शनग्रन्थ श्रीभारतधर्ममहामण्डलके अनुसन्धान विभाग द्वारा उद्धृत हुआ है। ज्ञानकी सप्त भूमिकाओंके अनुसार पंचम भूमिकाका यह दर्शन है। महर्षि जैमिनिद्वारा जो बृहत् कर्ममीमांसादर्शन उपलब्ध होता है यह केवल वैदिक कर्मकाण्डके विज्ञानका प्रतिपादक है। वैदिक यज्ञोंका प्रचार आजकल बहुत कम होनेके कारण जैमिनि दर्शनका उपयोग विलकुल नहीं होता है, यही कहना युक्तियुक्त होगा। महर्षि भरद्वाजद्वारा उपर्युक्त दर्शनग्रन्थ कर्मके सब अंगोंके विज्ञानका प्रतिपादक और धर्मविज्ञानके रहस्यका वर्णन करने वाला है। इसके चार पाद हैं—धर्मपाद, संस्कारपाद, क्रियापाद और मोक्षपाद। धर्मपादमें धर्म और धर्माङ्गोंका विस्तृत वर्णन, पुरुषधर्म, नारीधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, आपद्धर्म, प्रायश्चित्त प्रकरण आदि अनेक विषयोंका विज्ञान वर्णित हुआ है। संस्कारशुद्धिसे क्रियाशुद्धि कैसे होती है तथा उसके द्वारा मोक्षप्राप्ति किस प्रकार हो सकती है इत्यादि विषयोंका विज्ञान, संस्कारपाद, क्रियापाद और मोक्षपादमें वर्णित हुआ है इस ग्रन्थरत्नका दो तीन खण्डोंमें प्रकाशित होना संभव है, इसका प्रथम खण्ड प्रकाशित हो गया है।

दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग ।

वेदके तीन काण्ड हैं । यथाः—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड । ज्ञानकाण्डका वेदान्तदर्शन, कर्मकाण्डका जैमिनीयदर्शन तथा भरद्वाजदर्शन और उपासनाकाण्डका यह अंगिरादर्शन है । इसका नाम दैवीमीमांसा दर्शन है । यह ग्रंथ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ था । इसके चार पाद हैं, यथाः—प्रथम रसपाद, इस पादमें भक्तिका विस्तारित विज्ञान वर्णित है । दूसरा सृष्टिपाद तीसरा स्थितिपाद और चौथा लयपाद, इन तीनों पादोंमें दैवीमाया, देवताओंके भेद, उपासनासे मुक्तिकी प्राप्ति का सब कुछ विज्ञान वर्णित है, इस प्रथम भागमें इस दर्शनशास्त्रके प्रथम दो पाद हिन्दी अनुवाद और हिन्दी भाष्य सहित प्रकाशित हुए हैं । मूल्य १॥)

श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड ।

श्रीगीताजीका अपूर्व हिन्दी भाष्य । यह प्रकाशित हो रहा है, जिसका प्रथम खण्ड, जिसमें प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्यायका कुछ हिस्सा है, प्रकाशित हुआ है । आजतक श्रीगीताजीपर अनेक संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए हैं । परन्तु इस प्रकारका भाष्य आजतक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है । गीताका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी त्रिविध स्वरूप, प्रत्येक श्लोकका त्रिविध अर्थ और सब प्रकारके अधिकारियोंके समझने योग्य गीताविज्ञानका विस्तारित विवरण इस भाष्यमें मौजूद है । मूल्य १)

सप्त गीताएँ ।

पञ्चोपासनाके अनुसार पांच प्रकारके उपासकोंके लिये पांच गीताएँ—श्रीविष्णुगीता, श्रीसूर्यगीता, श्रीशक्तिगीता, श्रीधीशगीता और श्रीशम्भुगीता एवं संन्यासियोंके लिये

संन्यासगीता और साधकोंके लिये गुरुगीता भाषानुवाद सहित छप चुकी है। श्रीभारतधर्ममहामण्डलने इन सात गीताओंका प्रकाशन निम्नलिखित उद्देश्योंसे किया है:-१म, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको धर्मके नामसे अधर्म सञ्चित करनेकी अवस्थामें पहुँचा दिया है, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको अहंकारत्यागी होनेके स्थानमें घोर साम्प्रदायिक अहंकारसम्पन्न बना दिया है, भारतकी वर्तमान दुर्दशा जिस साम्प्रदायिक विरोधका प्रत्यक्ष फल है और जिस साम्प्रदायिक विरोधने साकार उपासकोंमें घोर द्वेषदावानल प्रज्वलित कर दिया है, उस साम्प्रदायिक विरोधका समूल उन्मूलन करना और २य, उपासनाके नामसे जो अनेक इन्द्रियासक्तिकी चरितार्थताके घोर अनर्थकारी कार्य होते हैं उनका समाजमें अस्तित्व न रहने देना तथा ३य, समाजमें यथार्थ भगवद्भक्तिके प्रचार द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस प्राप्तिमें अनेक सुविधाओंका प्रचार करना इन सातों गीताओंमें अनेक दार्शनिक तत्त्व, अनेक उपासनाकाण्डके रहस्य और प्रत्येक उपास्यदेवकी उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय सुचारुरूपसे प्रतिपादित किये गये हैं। ये सातों गीताएँ उपनिषद्रूप हैं। प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेवकी गीतासे तो लाभ उठावेगा ही, किन्तु अन्य चार गीताओंके पाठ करनेसे भी वह अनेक उपासनातत्त्वोंको तथा अनेक वैज्ञानिक रहस्योंका ज्ञान सकेगा और उसके अन्तःकरणमें प्रचलित साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे जैसा विरोध उदय होता है वैसा नहीं होगा, वह परम शान्तिका अधिकारी हो सकेगा। संन्यासगीतामें सब साम्प्रदायिक साधु और संन्यासियोंके लिये सब जाननेयोग्य विषय सन्निविष्ट हैं। संन्यासिगण इसके पाठ करनेसे विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

गृहस्थोंके लिये भी यह ग्रंथ धर्मज्ञानका भण्डार है। श्री-महामण्डल प्रकाशित गुरुगीताके सदृश ग्रंथ आजतक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें गुरुशिष्यलक्षण, उपासनाका रहस्य और भेद, मंत्र हठ लय और राजयोगोंके लक्षण और अंग एवं गुरुमाहात्म्य, शिष्यकर्तव्य, परमतत्त्वका स्वरूप और गुरुशब्दार्थ आदि सब विषय स्पष्टरूपसे हैं। मूल स्पष्ट सरल और सुमधुर भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित यह ग्रंथ छपा है। गुरु और शिष्य दोनोंके लिये यह उपकारी ग्रन्थ है। इसका अनुवाद वंगला भाषामें भी छप चुका है। पाठक इन सातों गीताओंको मंगाकर देख सकते हैं यह छप चुकी हैं। विष्णुगीताका मूल्य १), सूर्यगीताका मूल्य ॥), शक्तिगीताका मूल्य १), धीशगीताका मूल्य ॥), शम्भुगीताका मूल्य १) संन्यासगीताका मूल्य १) और गुरुगीताका मूल्य ॥) है। इनमेंसे पंचोपासनोंकी पांच गीताओंमें एक एक तीनरंगा विष्णुदेव, सूर्यदेव, भगवती, गणपतिदेव तथा शिवजीका चित्र भी दिया गया है। शम्भु-गीतामें वर्णाश्रमबंध नामक चित्र भी देखने योग्य है।

श्रीरामगीता ।

श्रीमहर्षि वशिष्ठकृत तत्त्वसारायणमें कथित यह श्रीराम-गीता है। परमधार्मिक विद्वान् स्वर्गवासी भारतधर्म-सुधाकर श्रीमहारावलजी साहब सर विजयसिंहजी बहादुर के० सी० आई० ई० डूंगरपूर राज्याधिपतिके पुरुषार्थ द्वारा इसका सुल-लित हिन्दी भाषामें अनुवाद हुआ है और विस्तृत वैज्ञानिक टिप्पणियोंके द्वारा इसके दुरुह विषयोंका स्पष्टीकरण किया गया है। इन टिप्पणियोंके महत्त्वको सब दर्शनोंका ज्ञाता और सब योगोंका अभ्यासी समझकर आनन्दित हो सकता है, क्योंकि

इसमें सब तरहके विषय आये हैं। इसके आदिमें श्रीरामचन्द्रजीके मर्यादापुरुषोत्तम अवतारकी लीलाओंका विशद रहस्य प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तकमें श्रीरामचन्द्र, सीता और हनुमान आदिके कई त्रैवर्णिक चित्र भी दिये गये हैं। कागज, छपाई तथा जिल्द आदि उत्कृष्ट हैं। श्रीमहामण्डलके शास्त्र-प्रकाश-विभागके संपादकत्वमें यह ग्रन्थरत्न प्रकाशित हुआ है इसमें अयोध्यामण्डपादिवर्णन, प्रमाणसार-विवरण, ज्ञानयोगनिरूपण, जीवन्मुक्तिनिरूपण, विदेहमुक्तिनिरूपण, वासना क्षयादिनिरूपण, सप्तभूमिका निरूपण, समाधिनिरूपण, वर्णाश्रम व्यवस्थापन, कर्मविभागयोगनिरूपण, गुणत्रयविभागयोगनिरूपण, विश्वरूपनिरूपण, तारकप्रणव-विभागयोग, महावाक्यार्थविवरण, नवचक्रविवेक योगनिरूपण, अणिमादि सिद्धि दूषण, विद्या-संततिगुरुतत्त्व निरूपण और सर्वाध्याय संगति निरूपण आदि विषय हैं। प्रस्तुत पुस्तकका मूल्य केवल २॥) है।

गीतार्थचंद्रिका ।

श्रीस्वामी दयानन्द-विरचित ।

श्रीस्वामीजीकी विद्वत्ता किसीसे छिपी नहीं है। उन्होंने बहुत ही परिश्रमके साथ गीतापर यह अपूर्व टीका लिखी है। केवल हिंदी भाषाके जाननेवाले भी इसके द्वारा गीताके गूढ़ रहस्यको जान सकें, इसी लक्ष्यसे यह टीका लिखी गयी है। इसमें श्लोकके प्रत्येक शब्दका हिंदी अनुवाद, समस्त श्लोकोंका सरल अर्थ और अन्तमें एक अतिमधुर चंद्रिका द्वारा श्लोकका गूढ़ तात्पर्य बतलाया गया है। इसमें किसीका आश्रय न लेकर ज्ञान, कर्म, और उपासना तीनोंका सामञ्जस्य किया या है। भाषा अतिसरल तथा मधुर है। इस ग्रन्थके पाठ

करनेसे गीताके विषयमें कुछ भी जाननेको बाकी नहीं रह जाता । हिंदी भाषामें ऐसी अपूर्व गीता अबतक निकली ही नहीं है । पद्मनाभमुखनिःसृत गोतामृतका अवश्य पान कीजिये । मूल्य प्रथम खण्डका १।) द्वितीय खण्डका १।)

सनातनधर्म-दीपिका ।

श्रीस्वामी दयानन्द-विरचित ।

इसमें १ धर्म, २ नित्यकर्म, ३ उपासना, ४ अन्नहार, ५ आश्रितपर्ण, ६ यज्ञोपवीतसंस्कार, ७ वेद और पुराण, ८ वर्ण-धर्म, ९ नारोधर्म, शिक्षादर्श और ११ उपसंहारशीर्षक निबंध लिखकर श्रीस्वामोजीने बड़ी ही सरल भाषा में सनातनधर्मके मौलिक सिद्धान्त समझा दिये हैं । यह पुस्तक अंगरेजी स्कूलोंकी दशम श्रेणीके विद्यार्थियोंके धर्मशिक्षा देनेके उपयोगी बनाई गई है । मूल्य केवल ॥) बारह आने ।

सरल बंगला शिक्षा ।

पं० गोपालचन्द्र चक्रवर्ती वेदान्तशास्त्री प्रणीत ।

हिन्दी भाषाभाषियोंमें बंगला सीखनेके लिये उत्कट आकांक्षा देखी जाती है । उसकी पूर्तिके लिये यह पुस्तक लिखी गयी है । यह पुस्तक पांच खण्डोंमें पूर्ण है । प्रथम खण्डमें "वर्णपरिचय" और "अनुवाद" द्वितीय खण्डमें "शब्दमाला" तृतीय खण्डमें "व्याकरण" चतुर्थ खण्डमें "कथित भाषा" और पञ्चम खण्डमें "मुहावरा" और "कहावत" दिये गये हैं । इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे बंगला पढ़ना, लिखना और बोलना बिना किसीके सहायता लिये ही आसानीसे आ जायगा । २६८ पृष्ठकी पुस्तकका नाम मात्र मूल्य १) है ।

निगमागम बुकडिपो, स्टेशन रोड,
बनारस सिटी ।

वर्णाश्रम-संघ ।

—:०ॐ०:—

भारतवर्षकी वर्तमान राजनैतिक परिस्थितिके विचारसे स्वधर्माभिमान, स्वजातीय अभिमान और स्वत्व रक्षापूर्वक वर्णाश्रमधर्मावलम्बी हिन्दू जातिका राजनैतिक अभ्युदय करना इस संघका उद्देश्य है । भारतवर्षके प्रति नगर तथा ग्राममें इस स्वजातीय संघकी सभ्य संख्या वृद्धि करके भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें एक एक प्रान्तीय केन्द्र स्थापन करनेका विचार है । उद्देश्य-पत्र पर हस्ताक्षर करके वर्णाश्रम-धर्म माननेवाले स्त्री-पुरुष मात्र ही इसके सभ्य हो सकते हैं । अभी संघके सभ्योंसे संघका फार्म भरवाया जायगा और उनके पास वर्णाश्रमसंघ नामक पुस्तिका पहुँचाई जायगी । संघके जो मुखपत्र हिन्दी और अंग्रेजीमें भारतधर्मसिण्डिकेट लिमिटेड बनारससे निकलते हैं, उनमेंसे एकका लेना संघके प्रतिनिधियोंके लिये आवश्यक होगा ।

मन्त्री—वर्णाश्रमसंघ,

सिण्डिकेट भवन, स्टेशनरोड, जगत्गंज,

बनारस (शहर)

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके सभ्यगण और मुखपत्र ।

हिन्दु जातिकी अद्वितीय विराट् धर्मसभा श्रीमहामण्डलके पांच श्रेणीके सभ्य होते हैं, यथाः—स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्माचार्यगण संरक्षक होते हैं । भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े जमींदार, सेठ, साहूकार आदि सामाजिक नेतागण उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं । प्रत्येक प्रान्तके अध्यापक ब्राह्मणगणमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डलके द्वारा चुने जाकर धर्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं । भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धी कार्य करनेवाले सहायक सभ्य, धर्मकार्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल, प्रान्तीय मण्डल और शाखासभाओंको धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्यादान करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और धर्मप्रचार करनेवाले साधु संन्यासी सहायक सभ्य । पांचवीं श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य होते हैं, जो हिन्दुमात्र हो सकते हैं । हिन्दुकुलकामिनीगण केवल प्रथम तीन श्रेणीकी सहायक सभ्या और साधारण सभ्या हो सकती हैं । श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय काशीसे एक हिन्दी भाषाका और दूसरा अङ्गरेजी भाषाका इस प्रकार सम्मिलित दो मासिक पत्र प्रकाशित होते हैं । इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय मण्डल, शाखा-सभा संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी और अङ्गरेजी भाषाका मासिक पत्र दिया जाता है । नियमितरूपसे नियत वार्षिक चन्दा २॥) देनेपर हिन्दू नर-नारी साधारण सभ्य हो सकते हैं । साधारण सभ्योंको बिना मूल्य मासिक पत्रिकाके अतिरिक्त उनके उत्तराधिकारियोंको तथा कन्या पुत्र आत्मीय आदिको समाजहितकारीकोपके द्वारा विशेष लाभ मिलता है ।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय,

जगद्गंज, बनारस ।